किशनचन्द 'बेवस'

(आधुनिक सिन्धी साहित्य के युगान्तरकारी कवि)

पद्म डी० शर्मा
आई० पी० एस०

साहित्यागार, जयपुर

प्रकाशक :
राजस्थान सिन्धी अकादमी
जे-7, सुभाष मार्ग,
'सी' स्कीम, जयपुर

आवरण : मोहन शर्मा

मूल्य : तीस रुपये

प्रथम संस्करण

1985

मुद्रक :
दी कपूर प्रेस
जयपुर।

KISHANCHAND 'BEWAS' (Criticism): PADAM D. SHARMA I.P.S.

दो शब्द

राजस्थान सिन्धी अकादमी की ओर से यह निर्णय लिया गया था कि साहित्यिक आदान-प्रदान हेतु हिन्दी जगत के पाठकों के सम्मुख सिन्धी भाषा के आधुनिक काल के युगान्तरकारी कवि किशनचन्द 'बेवस' पर हिन्दी में एक पुस्तक का प्रकाशन कराया जाये। इस कार्य के लिये अकादमी की कार्यकारिणी के सदस्य श्री पद्म डॉ० शर्मा, आई० पी० एस० (एम०ए०, बी०एड०, साहित्यरत्न), इस समय जिला पुलिस अधीक्षक, सीकर, राजस्थान को 'बेवस' पर संक्षिप्त आलोचनात्मक एवं परिचयात्मक पुस्तक लिखने के लिए अनुरोध किया गया। तदनुसार श्री शर्मा ने हिन्दी एवं सिन्धी साहित्य तथा विशेष रूप से 'बेवस' साहित्य के पर्याप्त अध्ययन एवं चिन्तन के साथ प्रस्तुत पुस्तक का लेखन-कार्य सम्पन्न किया है।

'बेवस' शताब्दी समारोह वर्ष में हिन्दी जगत के पाठकों के सम्मुख इस पुस्तक को प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है। महाकवि 'बेवस' का जन्म भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म (1885 ई०) के साथ हुआ और निर्वाण भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के वर्ष (1947 ई०) में हुआ। मुझे भी इस महाकवि के दर्शन का सौभाग्य अपने पूज्य पिता के साथ पैंतालीस वर्ष पूर्व लाड़काणा (सिन्ध) में प्राप्त हुआ था।

यह पुस्तक हिन्दी भाषा-भाषियों को आधुनिक सिन्धी साहित्य के उत्कृष्ट कवि 'बेवस' के कृतित्व का परिचय कराने के लिए लिखी गई है। अपने प्रयास में लेखक कहां तक सफल हुए हैं इसका निर्णय तो स्वयं पाठक ही कर सकते हैं। आशा है कि हिन्दी जगत इस पुस्तक के माध्यम से सिन्धी के इस महान कवि को पूर्ण सम्मान और सद्भावना के साथ तादात्म्य कर सकेगा।

इन्द्रसेन ईसरानी

1 जनवरी, 1985 — अध्यक्ष, राजस्थान सिन्धी अकादमी, जयपुर

प्राक्कथन

डॉ० ग्रियर्सन ने अपने प्रमुख ग्रन्थ 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया' के प्रथम भाग के प्रथम खण्ड मे आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ का वर्गीकरण करते हुए सिन्धी भाषा को 'उत्तर पश्चिमी समुदाय' की भाषाओ ('लहदा—पश्चिमी पजाबी) के साथ सम्बद्ध किया है। सिन्धी भाषा का विकास व्राचड़ अपभ्रंश से हुआ है तथा यह भाषा सिन्धु नदी के दोनो किनारों पर आबाद सिन्धु प्रदेश मे बोली जाती रही है। भारत-विभाजन के बाद सिन्ध के चौदह लाख हिन्दू निर्वासित होकर भारत के अन्य प्रदेशों मे बस गए हैं। सिन्धी भाषा की पांच प्रमुख बोलिया हैं, जिनमे मध्यसिन्ध की बोली 'विचोली' साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रयुक्त होती है।

सिन्धी भाषा मे कुछ ऐसी विशिष्ट ध्वनियां हैं, जो हिन्दी और संस्कृत में नही हैं। इन ध्वनियों के उच्चारण-वैशिष्टय को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक मे देवनागरी वर्णों के नीचे एक रेखिका लगाकर प्रयुक्त किया गया है, यथा—

(i) ग॒ = सघोष, अल्पप्राण, अन्त:स्फुटित, कोमलतालव्य, स्पर्श ध्वनि; यथा ग॒ड़ (गुड़)

(ii) ज॒ = सघोष, अल्पप्राण, अन्तः स्फुटित, कठिन-तालव्य, स्पर्श संघर्षी; यथा—अज॒ अथवा अज (आज)

(iii) ड॒ = सघोष, अल्पप्राण, अन्तः स्फुटित, मूर्धन्य स्फोटक स्पर्श; यथा—ड॒खणु अथवा ड॒खण (दक्षिण)

(iv) ब॒ = सघोष, अल्पप्राण, अन्तः स्फुटित द्वयोष्ठ्य स्पर्श—यथा ब॒ाफ (भाप)

सिन्ध प्रदेश राजस्थान से लगा हुआ है तथा अतीतकाल से ही पश्चिमी राजस्थान के सिन्ध से वाणिज्यिक सम्बन्ध रहे हैं। अतः सिन्धी भाषा और

पश्चिमी राजस्थानी में ध्वन्यात्मकता तथा शब्द-रचना के स्तर पर बहुत ही समानताएँ विद्यमान हैं, यथा—

हिन्दी	राजस्थानी	सिन्धी
आज	अज्ज	अजु,
कुमारी	कूँहरी, कुँवारी	कुँवारी
क्षण	खिण, छिन	खिन
श्मशान	मुसाण, मसाण	मसाणो
कृपा कीजिए	किरपा करज्यो	किरिपा कजो
न्योता	नूंतो, नोतो	नोतो
उष्णकाल	उन्हालो	ऊन्हारो
पक्षी	पखी, पाखो	पखी
लवण	लूण	लूण
मध्य	मांहि	मांहि, मंझि
भगिनी	बहिणि, भेण	भेण
मृत	मूउ	मुओ
इतना	एतलउ, अतरो	एतरो
करना	करिज्यो, करिजो	कजो
शाप	स्याप, सराप	सिराप
देखा	दीठउ	दिठो
श्रृङ्ग	सींग	सिङ,
वाणिज्य	विणज, बिणज	वणिजु, वणिज

इसके अतिरिक्त सिन्धी भाषा में कई बार—ष, श, तथा स का ह में परिवर्तन पाया जाता है; यथा—पाषाण (पहणु, पहण), देश (देहु, देह), सांस (साहु, साह), दोष (दोहु, दोह), विष (विह, विहु), मास (माह), ग्रास (गाहु, गाह), दस (दह), सिन्धु (हिन्दू) आदि। यह प्रवृत्ति राजस्थानी की कतिपय बोलियों में भी देखी जा सकती है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में अन्त्य स्वर के लोप एवं ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति देखी गई है। किन्तु सिन्धी भाषा इस अर्थ में संस्कृत के अधिक निकट है,

क्योंकि उसमे भी स्वरलोप और ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति नही है, अपितु उसमे बलाघात की प्रवृत्ति है जिसके फलस्वरूप शब्द के अन्तिम वर्ण पर बल दिया जाता है, यथा—सूर्य को (हिन्दी मे सूरज) सिन्धी में सूजुं, आम्र को (हिन्दी में आंम) सिन्धी मे अम्बु, ग्रास को (हिन्दी मे घास) सिन्धी में गाहु कहा जाता है।

भारतीय आर्य भाषाओ का मध्यकालीन रूप सिन्धी भाषा मे अब भी सुरक्षित है। पूरे उत्तर-पश्चिम प्रदेश मे (सिन्धी, पंजाबी, लहंदा, कश्मीरी) भाषा-परिवर्तन की गति अपेक्षाकृत धीमी रही है। सिन्धी में कर्म को कम, अष्ट को अट्ठ, रक्त को रत, अद्य (आज) को अजु, समुन्द्र को समुण्ड, भित्ति को भिति, आक्ष को अखि के रूप मे उच्चारित किया जाता है।

सिन्धी और पश्चिमी राजस्थानी भाषाओं में तो बहुत ही निकट का सम्बन्ध है। इस पुस्तक मे हिन्दी भाषा-भाषियो की सुविधा हेतु 'बेवस' की सिन्धी कविताओ को पहले देवनागरी लिपि में प्रस्तुत कर उनका हिन्दी काव्यानुवाद दिए जाने की योजना थी ताकि हिन्दी भाषा-भाषी सिन्धी और हिन्दी की समान और भिन्न प्रकृतियो से परिचित हो सकते किन्तु कुछ अपरिहार्य कारणो से यह संभव नही हो सका।

मुझे सिन्धी एव हिन्दी साहित्य के अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ है और मैंने बराबर यह अनुभव किया है कि दोनों भाषाओ एव उनके साहित्य की प्रवृत्तियो, धाराओ और उनके परिवर्तनो मे पर्याप्त रोचक एकरूपता व समानता रही है। अपने विद्यार्थी-काल से ही मेरी यह प्रबल आकांक्षा रही है कि इन समानताओ और आदान-प्रदान की संभावनाओ के क्षेत्र मे अपना कुछ योगदान दे सकूं। इसी दिशा में हिन्दी जगत को 'बेवस' साहित्य से परिचित कराने का यह मेरा पहला विनम्र प्रयास है।

हिन्दी साहित्य मे छायावाद के मूर्धन्य कवि जयशंकर प्रसाद की जो प्रतिष्ठा है, सिन्धी साहित्य मे वही गरिमा 'बेवस' को प्राप्त है। प्रसाद के समान 'बेवस' को भी साहित्य की लगभग सभी विधाओ मे समान अधिकार प्राप्त था। 'बेवस' ने सिन्धी साहित्य में एक नये युग का सूत्रपात किया है जिससे सिन्धी साहित्य को आगे की अनेक पीढ़ियां बराबर प्रेरणा प्राप्त करती रहेगी। यद्यपि 'बेवस' साहित्य इतना विपुल और समृद्ध है कि उसके विस्तृत समालोचन व अध्ययन के लिए अनेक शोध-ग्रन्थो की अपेक्षा है। मेरा यह प्रयास तो 'बेवस'

साहित्य की केवल महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों, परिस्थितियो और उपलब्धियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने भर का ही रहा है। आशा है कि सिन्धी एव हिन्दी के अध्येता इस दिशा मे समीक्षात्मक एव शोधपूर्ण कार्य करके न केवल 'बेवस' साहित्य को प्रकाश में लायेंगे बल्कि सिन्धी और हिन्दी के साहित्य एव भाषा की निकटता को प्रकाश मे लाने का महत्त्वपूर्ण एव वाछनीय कार्य भी सम्पन्न करेंगे।

व्यवसाय से पुलिस-कर्मी होने के नाते साहित्य, उसमें भी 'बेवस' जैसे गंभीर साहित्य के अध्ययन का अवसर बहुत कम रहता है किन्तु सिन्धी एवं हिन्दी के उत्कृष्ट विद्वान मेरे पूज्य पिता पण्डित देवदत्त कुन्दाराम शर्मा से प्राप्त प्रेरणा और संस्कार के परिणामस्वरूप ही प्रस्तुत पुस्तक के लेखन का साहस जुटा सका हू। लेकिन राजस्थान सिन्धी अकादमी, जयपुर के अध्यक्ष श्री इन्द्रसेन ईसरानी एव अकादमी के अन्य सदस्यों के प्रोत्साहन के अभाव मे इस पुस्तक का प्रकाशन संभव नहीं था, अतः मैं उनके प्रति अपना आभार प्रदर्शित करता हूं।

'बेवस' की अनेक रचनाएँ अत्यन्त गूढ व सूक्ष्म हैं जिनको हृदयगम कराने मे 'बेवस' के प्रमुख शिष्य, प्रसिद्ध सिन्धी कवि एवं शिक्षाविद् प्रोफेसर हरि 'दिलगीर' का पत्र-व्यवहार के माध्यम से बराबर मार्ग-दर्शन प्राप्त होता रहा है, अतः मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हू। इस पुस्तक को लिखने, पाण्डुलिपि मे सशोधन, परिवर्तन तथा परिवर्द्धन हेतु मुझे प्रोफेसर डॉ० राघव प्रकाश सहायक निदेशक, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर ने निरन्तर सहयोग दिया है जिसके बिना इस पुस्तक का इस रूप मे प्रकाशन संभव नही था किन्तु वे मेरे अपने हैं, अतः उनके प्रति अपनी भावाभिव्यक्ति हेतु मैं शब्दो की किसी औपचारिकता में नही पड़ना चाहता। मेरी पत्नी श्रीमती मोहिनी शर्मा (एम० ए०—दर्शनशास्त्र, बम्बई विश्वविद्यालय तथा भूतपूर्व सिन्धी उद्घोषिका आकाशवाणी, नई दिल्ली) ने 'बेवस' एवं अन्य सिन्धी साहित्य के अध्ययन मे निरन्तर सहयोग दिया है और परस्पर चर्चा-परिचर्चा के माध्यम से पुस्तक के लेखन मे हाथ बटाया है, अतः यहां उनका उल्लेख करना भी आवश्यक समझता हूं।

आशा है कि हिन्दी के पाठक सिन्धी साहित्य के इस महान कवि से परिचित होकर मेरे श्रम को सार्थकता प्रदान करेंगे।

1 जनवरी, 1985

पद्म डी० शर्मा

अनुक्रम

———

1

परिवेश और उद्भव

जिस प्रकार हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों—वीरगाथा काल, भक्ति काल तथा आधुनिक काल में विभाजित किया गया है उसी प्रकार सिन्धी साहित्य का इतिहास भी चार कालो मे विभाजित है। किन्तु सिन्धी साहित्य मे भक्ति काल व रीति काल की विभाजक-रेखा स्पष्ट नही है। भक्ति काल मे रीतिकालीन साहित्य उपलब्ध रहा है तथा रीति काल मे भक्तिकालीन रचनाओ की कोई कमी नही रही है।

सिन्धी मे अठारहवी व उन्नीसवी शताब्दी मे मुस्लिम शासकों (कल्होडा एवं मीर वंश) के शासन काल मे सारा राज्य-कार्य फारसी भाषा मे रहा था, इस कारण तत्कालीन सिन्धी साहित्य पर फारसी साहित्य की अक्षुण्ण छाप है। सिन्धी साहित्य के भक्ति काल के मूर्धन्य कवि शाह अब्दुल लतीफ (1689-1752 ई) ने अपनी नायिकाओं को सच्चरित्र एवं स्वकीया नायिकाओ के रूप मे प्रस्तुत किया तो फारसी के प्रभाव के कारण परवर्ती साहित्य में गुलबदन और बेवफा के रूप में चित्रित होने लगी। सिन्धी साहित्य फारसी के प्रतीको, उपमानों और छन्दों से आप्लावित हो गया। शराब, साकी, मयखाना, बुलबुल, गुलखार की भरमार हो गई। स्त्री जाति अब गुलफाम, वादाखोर व उच्छृंखल हो गई। अब वह नायक को

भरी सभा में नजरों के तीरों से घायल करने लगी, अब हया व शरम स्त्री जाति के आभूषण नहीं रहे। प्रसिद्ध कवि गुल (1784-1856 ई.) ने अपनी एक रचना में नायिका को सम्बोधित करते हुए कहा है कि हे प्रियतमा! तुम अपना मुख दिखाकर फिर उसे क्यों ढक देती हो? सच बताओ कि इस तरह मुझे क्यों तरसाती हो, किन्हीं को तो अपनी गोद में बिठाकर सम्मानित करती हो तो किस कारण कुछ लोगों को धक्के देकर बाहर कर देती हो?

उधर नायक अब नायिकाओं द्वारा युगों से पीड़ित व शोषित प्रेमिका की देहली पर नाक रगड़नेवाला मान-सम्मान-विहीन व्यक्ति के रूप में उभर कर आया। छन्दों में मसनवी, गजल, रुबाई, कतम, कसीदा आदि की प्रचुरता परिलक्षित होने लगी। हिन्दी के दोहे और सोरठा छन्दों का परिष्कृत रूप सिन्धी में दूहा (दोहीअड़ा) व बैंत के रूप में मिलता है। काजी काजन, शाह अब्दुल करीम, शाह लतीफ, सचल तथा सामी आदि कवियों में इस प्रकार के दूहे व सोरठे अत्यन्त ही प्रचुरता से मिलते हैं। इस युग में हिन्दी छन्द दोहे का सिन्धी रूपान्तर 'दूहा' का सिन्धी में अत्यन्त ही सफल प्रयोग हुआ है। विशेष तौर से शाह अब्दुल लतीफ तथा कवि सचल ने भाषा और भाव की दृष्टि से दूहा छन्द प्रयुक्त कर अत्यन्त ही उत्कृष्ट रचनाएं प्रस्तुत की हैं। इन दो कवियों के अलावा कुछ अन्य कवि जो फारसी के साहित्य से प्रभावित थे, उन्होंने शब्दों के जाल का ताना-बाना बुनकर भाव पक्ष को तिरोहित कर दिया। फारसी भाषा के तत्सम शब्दों के प्रयोग से तथा फारसी उपमानों के आधिक्य से इन कवियों का कला पक्ष इतना दुरूह और जटिल हो गया कि कविता कला से हुनर बन गयी, वह मन के तारों को छूनेवाली हृतंत्री से बदलकर मानसिक व्यायाम हो गयी।

ऐसी पृष्ठभूमि में किशनचंद 'बेवस' सिन्धी साहित्याकाश में एक उदीयमान नक्षत्र सदृश अवतरित हुए। उनका जन्म सिन्ध प्रान्त के लरकाना (लाड़काणा) नगर में 25 फरवरी, 1885 ई. को हुआ। उनके पिता का नाम श्री तीर्थदास खत्री था। माध्यमिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त सोलह वर्ष की आयु में उन्होंने प्राईमरी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, हैद्राबाद (हैदराबाद) सिन्ध में प्रवेश प्राप्त किया। वर्षा ऋतु का एक दिन था और पावस के मेघ आकाश में आच्छादित थे। सायंकालीन वर्षा ने ग्रीष्म की तपन को सींच-सींच कर वातावरण में पुरवाई की पुलक और

मलयानिल जैसा उन्माद ओत-प्रोत कर दिया था। जिस प्रकार महाकवि वाल्मीकि की पहली रचना क्रौंच-वध को देखकर अनायास ही शब्द रूप मे मूर्तिमान होकर प्रस्फुटित हुई थी, उसी प्रकार छात्रावास मे अपनी कुर्सी पर बैठे वर्षा के मनोहारी दृश्य के अवलोकन मे 'बरसात' शीर्षक की 'बेवस' की प्रथम कविता की सृष्टि हुई। छात्रावास के अधीक्षक रात्रि को चक्कर लगाते हुए जब किशनचंद के कमरे के बाहर से गुजरे तो अन्दर बत्ती जलती हुई देखकर कौतुहलवश अन्दर प्रविष्ट हुए, देखा किशनचंद कुर्सी पर गहरी निद्रा में लीन हैं, पास मे कागज पर उनकी प्रथम काव्य-रचना पडी हुई है। बड़े ध्यान से उन्होने रचना को पढा—वर्षा ऋतु में आकाश के आह्वान पर वाटिकाओ मे पुष्प प्रस्फुटित हो उठे, मन्द-मन्द वर्षा की बून्दों की महक से मस्तिष्क सुवासित हो उठा। आज बादल घिर आये हैं, पुष्प प्रतिरंजित होकर पुलकायमान हैं। बादलों के आगमन से लोगो के गले और घर शीतल हो रहे हैं। व्योम मंच पर बादलों की गड़गड़ाहट व घनघोर घटाओं का घोष निनादित हो रहा है मानो तानपूरा, वीणा व सारंगी के तारो को किसी ने छेड़ दिया हो। बादल अपने गर्जन के साथ विभिन्न प्रकार के संगीत की ध्वनि अलाप रहे हैं, वर्षा ऋतु में विद्युत ने अपनी चकाचौंध से सारे व्योम-मंच को प्रकाशित कर दिया है। अपनी यौवनावस्था को प्राप्त कर पुष्प और प्रसून हर टहनी पर पुलकित हो उठे है। पिपासु पपीहा पानी पीकर तृप्त हो कर उड़ रहा है; बुलबुल, तोता व चिड़ियों ने अपनी स्वर-लहरी की तान छेड़ दी है। वातावरण की स्निग्धता अन्तरात्मा के कोरों को छू गयी है। मलयानिल के प्रवाह से हर क्षण हृदय पुलकायमान हो उठा है, किसान मुग्ध मन से वर्षा ऋतु के प्रति आशावान है तथा वह अपने अंक मे बीजो को लेकर खेतों व क्यारियो मे बीजारोपण कर रहा है।[1]

---

1 आसमानी आछ्रसां अजुगुल टिड़्या गुलज़ारमे,
बून्द वारानी, वसे, पुर मग़ज़ हिब्रिकार मे ॥
मजु मिड़ी बादल लिड़ी आया, टिड़ी टोंगर वि खूब।
पिण चुड़ी ठारे निड़ी, घरमें घिड़ी यधिकारमे ॥
रउद रड़िका, गोड़ गड़िका, खूब कड़िका थो करे।
पिण तंबूरा साज़ सुरन्दा, सारंगनि जे तारमे ॥
(शेष अगले पृष्ठ पर)

कवि की प्रथम रचना 'बरसात' का आविर्भाव हुआ। छात्रावास के अधीक्षक तरुण कवि 'बेवस' की कृति से अत्यन्त प्रभावित हुए। वे कवि को बिना जगाए वापिस चले गए। अगले दिन अधीक्षक महोदय ने समस्त विद्यार्थियों के समक्ष पिछले दिन की घटना तथा कवि की रचना की भूरि-भूरि प्रशंसा की और भविष्यवाणी की कि किशनचन्द एक दिन अवश्य युगान्तकारी महाकवि बनेंगे।

'बेवस' एक लब्ध-प्रतिष्ठ व लोकप्रिय शिक्षक थे। बच्चों से इतना स्नेह कि अभिभावक गण व बच्चे उनके स्थानान्तरण के समय फूट-फूटकर रो पड़ते व कई बार तो शिक्षा विभाग के पास सिफारिशें पहुचतीं कि 'बेवस' जी का स्थानान्तरण रोका जाये, जबकि कवि इन गतिविधियों से पूर्णरूपेण अनभिज्ञ होते थे।

कवि के पिता यूनानी पद्धति के हकीम थे। उनकी माता भी आस-पड़ौस के रुग्ण बच्चों को घुट्टियां व नुस्खे देकर इलाज करती थी। सन् 1930 में उन्हें एक मित्र से होम्योपैथी की कुछ पुस्तकें व दवाइयां प्राप्त हुईं, जिनका उन्होंने गहराई से अध्ययन कर प्रयोग किया। 1932 में उन्होंने डॉ. गोविन्दराम दादलानी, जो कि कलकत्ता के होम्योपैथिक कॉलेज मे अध्ययन कर रहे थे, के द्वारा कुछ पुस्तकें व औषधियां मंगाकर लोगों का इलाज करना शुरू किया। 1935 में डॉ. गोविन्दराम ने लाड़काणा मे "बेवस शफाखाना" नाम से होम्योपैथी का अस्पताल खोला। 'बेवस' जी सात्विक प्रकृति के व चरित्रवान व्यक्ति थे। डॉ. गोविन्दराम जी को औषधालय के उद्घाटन से पूर्व जो मार्मिक शब्द कहे वे उनकी मनःस्थिति व सच्चरित्रता को उद्घोषित करते है। वे शब्द थे —"हकीम का मन साफ, आस साफ तो हाथ में अवश्य ही शफा (स्वास्थ्य लाभ) होगी।"

मींहं जे माण्डाण सां सारा चमन चाण्डाण थ्या।
फूहमे गुलफुल फुटी पैड़ा खिली हर टारमें॥

पी पपीहो खूब पाणी, ढव मंझा ढाप्यो घुमे।
बुलबुलं, चीहा, चतं, आहिन लगा ललकारमें॥

रूहखे राहत रसे, अजु ताजगी चौदिस दिसी।
हीर दिल खे हर घड़ीअ खुश थी करे खुनकार में॥

'बेवस' जी स्वभाव से लज्जालु और शान्त प्रकृति के थे। उनकी कृतियों को मुखरित करनेवाले उनके मित्र एवं विद्यार्थी न होते तो 'बेवस' जी अन्धकार के सागर में विलीन हो गये होते। सिन्ध के प्रमुख प्रकाशन संस्थान सुन्दर साहित्य' के संस्थापक फतहचन्द वासवाणी ने समय-समय पर उनकी कृतियों को प्रकाशित कर जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। सिन्ध के लोक-गायक पद्‌मश्री हुन्दराज 'दुखायल' ने 'बेवस' की मधुर कविताओं को अपनी स्वर-साधना से सिन्ध प्रांत के कोने-कोने में गुंजायमान किया तथा भारत-विभाजन के पश्चात् सम्पूर्ण भारत में फैले हुए सिन्धी समुदाय के जनमानस तक पहुंचाया। पद्‌मश्री प्रोफेसर राम पंजवानी तथा प्रोफेसर हरि 'दिलगीर' ने कवि की कृतियों को छात्र-समुदाय के सम्मुख प्रस्तुत कर उनके अर्थ-गाम्भीर्य तथा परिपाटी से हटकर कवि की नवीन चिन्तनशीलता की ओर इंगित किया।

अपनी पुस्तक 'कवि श्रीमाला' (किशनचन्द 'बेवस') में पण्डित देवदत्त कुन्दाराम शर्मा ने 'बेवस' की रचनाओं के अत्यन्त ही सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। दिल्ली में सन् 1911 में जब जॉर्ज पंचम का राज-दरबार हुआ था तब भारत के अनेक कवियों ने उनके स्वागत में गीत लिखकर भेजे थे। 'बेवस' ने भी एक गीत लिखा था जिसे वहाँ न भेजकर लाडकाणा की स्थानीय पत्रिका में प्रकाशित किया। उसकी प्रति जब सरकार द्वारा लन्दन भेजी गई, तो कहते हैं कि लन्दन की जनता को उक्त कविता बड़ी पसन्द आई और वायसराय को तार भेजा गया कि उस कविता को आर्ट पेपर पर स्वर्ण अक्षरों में छपवाकर म्यूजियम में रखवा दिया जाये।

'बेवस' आशुकवि थे। उन पर सरस्वती का वरद हस्त था, इसीलिए उनके मुख से कविता का अजस्र प्रवाह निकलकर स्वतः कागज पर अंकित हो जाता था। पं. देवदत्त कुन्दाराम शर्मा ने उपरोक्त पुस्तक में आगे लिखा है कि एक बार मैंने 'संस्कृत परिषद्' के मन्त्री की हैसियत से उनसे कालिदास पर कविता रचकर भेजने की प्रार्थना की थी, तो उन्होंने एक सुन्दर रचना भेज दी। इससे प्रमाणित होता है कि वे इतनी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकने पर भी निराभिमानी ही रहे। आगे लिखा है कि दादू (सिन्ध में एक नगर) में जब हमने द्वितीय सिन्ध राष्ट्रभाषा-सम्मेलन का आयोजन किया था तो वे हमारे निमन्त्रण पर अपना अमूल्य समय देकर प

1925-1940 ई. तक 15 वर्षों की अवधि में 'बेवस' ने सिन्धी भाषा एवं साहित्य में सर्वोपरि स्थान प्राप्त कर लिया। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उनका पदस्थापन प्रधानाध्यापक के रूप में अपने नगर लाड़काणा के नजदीक ही हुआ था, इस कारण वे साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेते रहे। उनके मकान 'जशनखाना' में वे अतिथियों का उदार हृदय से आदर-सत्कार करते थे। भगवान कृष्ण एवं गायों में उन्हें विशेष प्रेम था तथा लोगों में गोपालन के प्रति नवीन उत्साह सर्जित करने के लिए आधुनिक डेयरी फेडरेशन के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए एक वृहद् योजना तैयार की थी जिसकी क्रियान्विति अपने घर में गोपालन करके की।

सूर्यास्त के समय एक दुबले-पतले व्यक्ति 'बेवस' नहर के किनारे शांत वातावरण में जाते हुए नजर आते थे। वे अपने 'जशनखाने' से अपने उद्यान 'ज्ञान बाग' की ओर जाते हुए दृष्टिगोचर होते थे। वर्षा हो या आंधी, घड़ी जैसी समयनिष्ठता से वे सायंकाल को 'ज्ञान बाग' पहुंचते, जहाँ गीता अथवा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजली पर उनका प्रवचन होता। 1946-47 के आस-पास हिन्दू-मुस्लिम तनाव एवं साम्प्रदायिक दंगों से कवि का कोमल चित्त व्यथित हो उठा। अपना घर, जमीन, जायदाद सभी को छोड़कर सारा हिन्दू समुदाय 1947 में नवनिर्मित पाकिस्तान से पलायन कर नये जीवन की खोज में भारत की ओर प्रयाण कर रहा था। कवि मूकद्रष्टा की तरह इस प्रकार के साम्प्रदायिक दंगों पर अश्रुयुक्त नयनों से शांति का संदेश फैलाने हेतु 'ज्ञानबाग' में प्रवचन देते रहते थे। कई युवा विद्यार्थी तारों के समान चन्द्रमा की परिधि में अवस्थित हो चुके थे। भीगी आखों से उनके प्रवचन सुनते और भावविभोर हो अश्रुपूरित आंखों से "ज्ञान बाग" से बाहर निकलते। 15 अगस्त, 1947 को भारत-विभाजन हो चुका था, पलायन की गति और बढ़ गयी थी, वातावरण में हिंसा की गंध थी, मोहल्ले के मोहल्ले प्रतिदिन खाली होकर भारत जा रहे थे, किन्तु कवि वहीं डटे रहे। रुग्णावस्था में भी त्रस्त हिन्दू समुदाय को ढांढस बंधाते, आशा का नया संदेश देते। वे पंजाब, बलूचिस्तान तथा सिन्ध में साम्प्रदायिक दंगों के रक्तपात की सूचनाएं सुनकर द्रवित हो जाते। भावी प्रबल है, 23 सितम्बर, 1947 को कवि ने नश्वर शरीर त्याग दिया। उनके परिजन उनकी मृत्यु के बाद अपना सब कुछ वहीं छोड़कर तुरन्त भारत आ गये।

2

रचनाएँ एवं रचना-विकास-क्रम

'बेवस' सिन्धी साहित्य के आधुनिक काल के सर्वोतमुखी प्रतिभा के अमर कवि हैं, जिन्होने पद्य और गद्य दोनो विधाओं पर समान रूप से अधिकार रखा। एक अध्यापक होने के नाते उन्होंने विद्यार्थियो के लिये सामूहिक गीतो, प्रभात फेरी के प्रचार गीतो की सृष्टि की तथा पाठशालाओं के उत्सवो के लिए मचनीय नाटकों की रचना की। उनके गद्य मे गतिशीलता, मर्यादा तथा उपदेशात्मकता प्रत्यक्ष परिलक्षित है। ऐसा प्रतीत होता है कि सारा गद्य विद्यार्थियों के लिये ही लिखा गया हो। लेखो में गद्यकाल की सूक्ष्मदर्शिता भाव-प्रवणता तथा अध्यापन की शैली का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है। उनके गद्य से ही वाक्यों का पद्यमय प्रवाह, तुकान्तता तथा कोमल तार-गुम्फन उनमे भावी कवि के उदय की ओर इंगित करता है। उनकी प्रमुख गद्य रचनाएँ हैं कवि इसलाकी वर्क, प्रह्लाद भक्त, सूरदास, प्रित पुजारिण (प्रीति-पुजारिन), मनोहर नागिन (पवित्र प्रेम), तृष्णा-चाकर, इण्डलठ (इन्द्र धनुष), भागिया स्कीम (समृद्धि-योजना), जिगरी कुर्बानी आदि।

जुलाई 1933 में 'इसलाकी वर्क' नामक उनका निबन्ध-संकलन प्रकाशित हुआ जिसमे नाटकों के अलावा सोलह निबन्ध भी हैं। ये निबन्ध सच्चरित्रता, आन्तरिक आनन्द, ज्ञान-अज्ञान, परिश्रम का आनन्द, हृदय और मस्तिष्क, बालक, संसार क्या है ?, फूल, नष्ट करने की अपेक्षा निर्माण, जीवन का

उद्देश्य आदि विषयो पर हैं। 'बेवस' जी के निवन्ध सीमित आकार के होकर विषय-निर्वाह की दृष्टि से अपनत्व और मौलिकता लिए हुए हैं। लेखक स्वयं अध्यापक थे इसलिए उनकी इन रचनाओं मे अध्यापन-व्यवसाय की झलक स्पष्ट परिलक्षित होती है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होने लगता है कि एक अध्यापक अपनी कक्षा के बच्चो को कुछ कह रहा हो। 'ससार क्या है' नामक शीर्षक निबन्ध में कवि का दार्शनिक पक्ष प्रबल हो उठा है। कही उसे युद्ध-स्थल कहकर सम्बोधित किया है, कही उसे पाठशाला कहा है, कही आमोद-प्रमोद गृह कहा है; कही मातम की सराय कहकर पुकारा है तो कही उसे प्रेम-पुरी या शोभानगर कहा है। संसार को दी हुई उपर्युक्त सभी सज्ञाओं की अत्यन्त सुन्दर एवं प्रभावशाली शैली से व्याख्या कर अन्ततोगत्वा 'बेवस' जी ने अपना मन्तव्य कुछ-कुछ इसी प्रकार प्रकट किया—'जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।' संसार का भेद कोई नही जान पाया है, जिसकी जैसी धारणा रही है वैसी ही व्याख्या संसार के विषय मे उसने की है।

कवि के निवन्धो पर अंग्रेजी चिन्तन एवं विचारधारा की छाप स्पष्ट परिलक्षित है। 'जीवन का उद्देश्य' नामक निवन्ध मे अंग्रेजी की विख्यात उक्ति 'नो दाई सेल्फ' की व्याख्या प्रतीत होती है। व्यवसाय से अध्यापक होने के नाते अपने निबन्ध 'बालक' मे 'स्पेअर दी रॉड एण्ड स्पॉइल दी चाइल्ड' की व्याख्या कर यही प्रतिपादित किया है कि उक्त अंग्रेजी उक्ति आज की परिस्थितियों में भ्रामक एवं त्रुटिपूर्ण है। 'परिश्रम आनन्द' नामक शीर्षक पर अंग्रेजी निबन्ध 'डिग्निटी ऑफ लेबर' का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कुछ निबन्धो मे लॉर्ड बेकन आदि को उद्धृत किया गया है।

प्रह्लाद भक्त और सूरदास उनकी पारम्परिक रचनाएँ हैं, जिनमें कवि के भगवत प्रेम, आस्तिकता तथा ईश्वर भक्ति-सम्बन्धी अभिव्यक्ति है तथा उपदेश-वृत्ति और एक अध्यापक के विद्यार्थियों को प्रबोध देने की भावना स्पष्ट दर्शित होती है।

'प्रित-पुजारिण' तीन दृश्यो का एक लघु एकांकी नाटक है, जिसका नायक पवन राजकुमारी अंजना के प्रति आसक्त है तथा वह अंजना के अलावा किसी अन्य

से प्रणय बन्धन जोडने के लिए तैयार नही है। सुखदा अमृतपुर के प्रासाद की रूपवान राजकुमारो है, वह पवन से मन ही मन प्रेम करती है और उसके अलावा अन्य किसी से विवाह-बन्धन में बंधना नही चाहती। अन्त मे सुखदा को प्रेम मे निराशा मिलती है और वह जोगिन बनकर प्रेम की राह मे हट जाती है। नाटक अत्यन्त ही साधारण है और ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की प्रारम्भिक कृतियों मे से ही एक है। इस एकांकी नाटक में आंगिक, वाचिक, सात्विक आदि अभिनय की भंगिमाओं का अभाव है। नाटककार अपने उद्देश्य मे सफल नही हुआ है। कथानक का क्रम चरम सीमा पर पहुंचने से पहले ही अंत की ओर अग्रसर हो गया है। नाटक मे फ़ारसी शैली के तुकान्त पद्यों की भरमार है, और रसनिष्पत्ति से पहले ही पटाक्षेप हो जाता है।

जिगरी कुर्बानी (जिगर की कुर्बानी) मे उन्होने मेवाड़ की पन्ना धाय का प्रकरण लेकर उसके द्वारा अपने पुत्र के बलिदान की ऐतिहासिक वीरगाथा को प्रस्तुत किया है। नाटक के संवाद अत्यन्त मार्मिक व हृदय को झकझोर देनेवाले हैं। पन्ना धाय वीर नारी के समान ललकार कर रणवीर को कहती है कि—ऐ, भूखे भेड़िये, तुम अनेक को अपनी तलवार से मौत के घाट उतार चुके हो, मैं मरने के लिये तैयार हूं, किन्तु मेरे बच्चे को छोड़ दो। कवि की काव्य-प्रतिभा कविताओं के रूप मे बार-बार प्रस्फुटित हो उठती है। पन्ना धाय कहती है -"मेरे सिर को फोड़कर मेरे व्यथित हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर दो, अंग-प्रत्यंगों को भस्मीभूत कर मेरी भस्म को उड़ा दो, मेरे हाथो और कलाईयों को काट दो, टांगों और बाहों को तोड़ दो, किन्तु मेरे बच्चे को छोड़ दो।[1] रणवीर पन्ना धाय के बच्चे को उदयसिंह समझकर उसका वध कर देता है। कवि हृदय नाटककार ने ऐसी दुखान्तिका को दृश्यमान करने के लिये प्रकृति का उद्दीपन के रूप मे चित्रण कर सारे गगन-मण्डल को भीषण ध्वनि से निनादित बताया है, पूरा व्योम-मण्डल कम्पायमान हो उठा है,

---

1. फोड़ि सिर कर टुकड़ा टुकड़ा मुंहिंजे दिल गमनाक खे
तन बदन सारो जलाए, छदि उडाए खाक खे,
हथ करायूं मोड़्यूं कपि, टंगूं बांहूं टोड़ि तूं
छोड तूं पर छोड़ तूं, मुंहिंजे बचे खे छोड़ तूं।

भवनमण्डल भय से त्रस्त हो गया है तथा पृथ्वी पर भूकम्प आ गया है, पवन कम्पायमान है, वायु आलोडन से झकझोर उठी है।[2]

'आर्थर जो कतल' (आर्थर का कत्ल) नाटक शेक्सपीयर के नाटक 'किंग लीअर' का संक्षिप्तीकरण है। नाटक में कथानक शेक्सपीयर का ही है परन्तु 'बेवस' ने उसके भाषा-भाव तथा कथोपकथनों में अपनी मौलिकता रखी है।

तत्कालीन समाज में प्रचलित अनमेल विवाह की कुप्रथा पर करारा प्रहार करते हुए 'पोड़हेजो परिणो (वृद्ध-विवाह) नाटक की रचना की है। भाषा, भाव, कथानक, चरम-सीमा, अन्त सभी नाटकीय तत्त्वों की दृष्टि से यह नाटक अत्यन्त ही उत्तम बन पड़ा है। कंवरसिंह नामक एक धनवान वृद्ध व्यापारी शादी करने की इच्छा से एक युवती के घरवालों को धन का लालच देकर शादी करना चाहता है। उसके पुत्र और पोते अपने पिता और दादा की दुर्मति से खिन्न होकर एक षड़यंत्र की रचना करते हैं जिसमें उसका पोता नयी दुल्हन के कपड़े पहनकर अपने दादा की दुल्हन बनकर विवाह-मण्डप पर सजधज कर बैठ जाता है। बेटे तथा पुत्रवधुएं एकत्र होते हैं। शादी की शहनाई बजती है और सभी परिजन अपने पिता तथा दादा के समक्ष अन्त में रहस्योद्घाटन करते हैं। इस नाटक में कई वार्तालाप पद्य में हैं तथा दो गीत भी है। 'बेवस' मूलतः कवि थे, अतः जहां उन्हें अपने कवित्व की प्रतिभा को प्रदर्शित करने का अवसर मिला है, वहां उन्होंने नाटकों में भी पद्य को उचित स्थान दिया है। हिन्दी साहित्य में जयशंकर प्रसाद ने काव्य, नाटक, उपन्यास तथा कहानी का समान अधिकार से सृजन किया है फिर भी वे कवि पहले और नाटककार बाद में माने जाते हैं। उसी प्रकार 'बेवस' जी कवि के रूप में अग्रणी है तथा गद्यकार के रूप में उनका स्थान गौण रहा है। उनके नाटकों में गीतों की गुंजार व तुकान्त वाक्यों की प्रचुरता है।

---

2. जहिं घडीअ लोहूअ सां रङिजी-लाल थ्यो हो सादलो,
गगन में घमसान थ्या-आकास में थ्यो थर्थलो,
भवनमण्डल भयतामें हो, ऍ हो ज़मीन ते ज़र्लाजलो,
पवन पासे सा कम्बी थे, वाअ में हो विलविलो ॥

निबन्धों की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं उनका निर्जीवन, भाषा-सौष्ठव एव चमत्कारमय शैली, जो भाव एवं भाषा को गतिमान कर पाठक पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

कवि ने एक समाजशास्त्री तथा अर्थशास्त्री का परिचय "भागिया स्कीम" (समृद्धि-योजना) में दिया है। सन् 1944 में उन्होंने एक विस्तृत योजना को प्रकाशित किया जो सहकारी दुग्ध-योजना के रूप में जानी जाती है। योजना के अनुसार उन्होंने गायों और भैंसों के विकास के लिये सहकारिता के उद्देश्यों की विस्तृत रूप से व्याख्या की है। चौपायो के बाड़े बनाने, दूध निकालने, इलाज करने, लेखा-जोखा रखने, खाद के आवंटन, चरागाह-व्यवस्था, दूध का वितरण व्यवस्था आदि विषयों पर व्यापक योजना प्रस्तुत की है। योजना में उन्होंने कई सुन्दर तथा चौंका देनेवाले आंकड़े प्रस्तुत किये हैं—कि ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व कात्यायन के समय में एक गाय का मूल्य 10 पैसे था। चन्द्रगुप्त काल में देशी घी एक पैसे में दो सेर था, ईसा की चौथी शताब्दी में गाय का मूल्य एक रुपया चार आने था तथा बैल का मूल्य दो रुपये था। तेरहवी शताब्दी में अलाऊद्दीन खिलजी के काल में एक मन घी का भाव एक रुपये दो आने था। अकबर के समय में एक मन घी का भाव बारह रुपये था। अठारह सौ सत्तर ईसवी में अंग्रेजो के राजकाल में पांच सेर घी का भाव एक रुपया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने गायो के दूध देने की क्षमता के सम्बन्ध में विदेशो के कई सुन्दर आंकड़े 1944 में पेश किये थे। सहकारी दुग्ध-योजना का क्रम जो अभी भी स्वतन्त्र भारत में ज़ोर नहीं पकड़ पाया है, कवि ने अपनी सूझबूझ, दूरदर्शिता से सन् 1944 में ही उसे क्रियारूप देकर अपनी अर्थव्यवस्था सम्बन्धी जानकारी तथा सहकारिता के उद्देश्यों के ज्ञान का अनूठा परिचय दिया था।

कवि की पद्य रचनाएं बहारस्तान (वसन्त नगरी) फूलदानी, शीरी शेर (सुमधुर काव्य), सामुंडी सिपू (समुद्र की सीपियां), वेवस गीताजली, शेर वेवस वेवस-काव्य) मौजी गीत तथा गुरुनानक जीवन कविता प्रकाशित हो चुकी हैं। बहारस्तान फूलदानी तथा शेर-वेवस कवि की आरम्भिक रचनाएं हैं, जिनमे प्रकृति-चित्रण, देश-प्रेम तथा अन्य विषयो का प्रतिपादन किया गया है। फूलदानी (1939 ई.) एक संकलन है, जिसमे कवि की प्रमुख रचनाएं हैं :—लालण लकाउ

तुंहिजो (प्रियतम तेरा दिव्य-दर्शन), सची राहत (सच्ची राहत) हिमालय, मजूरिण (मजदूरिन), बहार (वसन्त), ग्रानन्द जो उछल (ग्रानन्द की तरंग), कुर्बानी ग्रादि। 'बेवस' के ग्रलावा सिन्धी साहित्य के ग्रन्य कवियों - शाह (1689-1752 ई.), सामी (1743-1850 ई.), सांगी (1850-1924 ई.), मिर्जा कलीच बेग (1849-1929 ई.) ग्रादि की रचनाएं भी इस सग्रह मे सकलित हैं।

शीरीं शेर (1943) के प्रकाशन से सिन्धी साहित्य मे नये दौर का धमाका-सा हुग्रा। भाषा, भाव, शब्द-चयन, ग्रलकार, शब्द-योजना, शब्द-चित्रण, कल्पना की उड़ान तथा पुरानी फ़ारसी शैली से हटकर ठेठ सिन्धी काव्य की ऐसी छटा पहले कभी किसी कवि ने प्रस्तुत नही की थी। डॉक्टर, (प्रोफेसर), ग्रर्जुन 'शाद' ने ग्रपनी पुस्तक 'बेवस ऐं नग्रो दौर' (बेवस ग्रौर नया दौर) मे ग्रत्यन्त सुन्दर एवं समीचीन रूप में कहा है कि 'बेवस' ने ग्रपने समय के शब्द-भण्डार का गहन ग्रध्ययन किया तथा ग्रपने काव्य में उसी भाषा को ग्रपनाया जिसे जन-साधारण ग्रासानी से समझ सके। उन्होंने संस्कृत, ग्ररबी ग्रौर फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग कर उन्हें सिन्धी भाषा में समाहित कर दिया (पृष्ठ 20)। शीरी शेर के ग्रामुख में श्री एच. एम. गुरबक्शानी (ग्राचार्य डी० जे० सिन्ध कॉलेज कराची) ने लिखा है कि मै काफी समय से श्री किशनचन्द जी की काव्य-रचनाग्रो को पत्रिकाग्रों एवं ग्रखबारों में पढ़ता ग्राया हूँ तथा इस पुस्तक में उन्हीं कविताग्रो का संकलन प्रकाशित किया गया है। विषय-वस्तु तथा भाषा की दृष्टि से ये कवितायें मौलिक हैं तथा किशनचन्द जी ने सिन्धी काव्य को नयी दिशा प्रदान की है। 'पुस्तक' की भूमिका के लेखक श्री मेलाराम वासवाणी ने 'शीरी शेर' की रचनाग्रो के भाषा-सौष्ठव, छन्द-विधान, कल्पना की उड़ान एवं विचारों की सूक्ष्मता को प्रभावशाली बताते हुए 'बेवस' की समस्त कविताग्रो का विषय-वस्तु की दृष्टि से सात भागों मे विभाजन किया है :—

(1) प्रकृति-चित्रण :—बहार (बसन्त), बरसात, कारी घटा (काली घटा) व सहाई रातड़ी (पूर्णिमा)।

(2) वर्णनात्मक कवितायें —ग्राङुरयूं ऐं मुंडी (ग्रंगुलियां ग्रौर ग्रंगूठी), सिन्ध व टिटैनिक (ब्रिटेन का एक यात्री-वाहक जलपोत जो 15 ग्रप्रैल, 1912 को जलमग्न हुग्रा था।

(3) उपदेशात्मक कविताएं :—नेकी, शराब, जुआ आदि।

(4) तात्कालिक समस्याओं पर कवितायें :—ब्रादरी (बिरादरी), कुडभीग्र जो ग्रास (किसान की ग्राशा) व सहकारी हलचल (सहकारी ग्रान्दोलन)।

(5) विद्यार्थियों से सम्बन्धित रचनाएं :—धणीग्र दरि बेनती (परमात्मा के द्वार पर बिनती) व स्काउट।

(6) देशप्रेम की रचनाएं :—पखी ग्र जी पुकार (पक्षी की पुकार), महाराणा प्रताप आदि।

(7) सूक्ष्म भावावेश की रचनायें :—मुहब्बत, मात गोद (माता की गोद), मुलड़ीग्र जो बेताबी (कभी की बेचैनी)।

(8) विशद-कल्पना व सूक्ष्मदर्शिता के उदाहरण :—शाह (शाह ग्रब्दुल लतीफ—सिन्ध के भक्तिकाल के युगान्तरकारी सूफी कवि (1689–1752 ई.), शहसवारी (विराट की रथ-यात्रा—रहस्यवादी कविता) व होत (प्रियतम)।

शीरी शेर के प्रकाशन से सिन्धी साहित्य में एक नये युग का सूत्रपात हुग्रा। 'बेवस' के समकालीन तथा पूर्ववर्ती कवि सिन्ध के भक्तिकालीन कवियों शाह साहब (1689–1752 ई.), सचल (1739–1829 ई.) तथा सामी (1743-1850 ई) द्वारा प्रयुक्त पुरानी सिन्धी का ही काव्य-रचनाग्रों मे प्रयोग कर रहे थे। 'शीरीं शेर' की सरल ठेठ सिन्धी भाषा ने नयी पीढ़ी के कवियों को एक नयी दिशा प्रदान की। कवि कुल ने पुरानी भाषा के मोह का परित्याग कर बोल-चाल की जन-भाषा का प्रयोग प्रारम्भ किया।

विषय-वस्तु की दृष्टि से भी 'शीरी शेर' संकलन में पुरानी परिपाटी के इश्क ग्रौर मुहब्बत के विषयों में हटकर समयानुकूल काव्य-रचनाग्रों का सृजन हुग्रा है जिनमें देश-प्रेम, सामाजिक समस्याग्रों का ग्रंकन, प्रकृति-चित्रण प्रमुख हैं। यह कहने में ग्रयुक्त नहीं होगी कि 'बेवस' की शिष्य-परम्परा उनकी कविताग्रो से प्रभावित होकर स्वतः ग्रारम्भ हो गयी। इनमें हरि 'दिलगीर', पद्मश्री हूंदराज 'दुखायल' तथा प्रभु 'वफ़ा' प्रमुख हैं। ग्राज के भारत तथा पाकिस्तान में रहनेवाले समस्त सिन्धी कवियों पर 'बेवस' की रचनाग्रों की छाप स्पष्ट

परिलक्षित होती है। पाकिस्तानी कवियो में 'ग्रायाज़' तथा तन्वीर' पर 'वेवस' की भाषा तथा भाव का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

'शीरी शेर' मे संकलित उपदेशात्मक कविताग्रो में जैसे कि नेकी, शराब, जुग्रा ग्रादि मे समवर्ती एवं प्राचीनकालीन कवियो जैसी कोरी उपदेशात्मक प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नही होती। उन कविताग्रों में भी एक युगान्तरकारी कवि का भाव-गाम्भीर्य, भाषा-सौष्ठव तथा जगत की मंगल-कामना का सन्देश मुखरित है। इन कविताग्रो मे छिपी नैतिकता कवि की मनःस्थिति की परिचायक है तथा ऐसा प्रतीत होता है मानो इन व्यसनों से होनेवाले मानव-ग्रहित को देखकर कवि की ग्रन्तरात्मा ग्रार्तनाद कर उठी हो।

सामूंडी सिपूं (समुद्र की सीपियां) का प्रकाशन 1929 मे हुग्रा। इस संकलन मे कुल चवालीस कविताएं हैं, जो रहस्यवाद, प्रकृति-चित्रण, देशभक्ति ग्रादि विषयो पर है। ग्रपनी कविता "गुप्त गंगा ज्ञान जी" (ज्ञान की गुप्त गंगा) मे कवि ने कहा है—*"ज्ञान रूपी गुप्त गंगा प्रातःकाल की वेला मे निःसृत होती है।* ज्ञान का गोताखोर ही गहरा पैठकर बहुमूल्य मोती बटोर लाता है, कबीर की तरह वर्तमान युग के कोरे पुस्तकीय ज्ञान, रखने वाले पण्डितो पर करारा प्रहार करते हुए कवि कहते हैं कि धर्म की किताबो को कैद में रख लिया गया है फिर क्यो नही महाभारत युद्ध होगे ? धर्म की परिभाषा करते हुए कवि कहते हैं कि धर्म हृदय की एक दशा है जिसमे प्रेम, उत्सर्ग तथा पराये दुखः, सूक्ष्म भावनाग्रों तथा कोमलता का जितना ग्राधिक्य होगा उतनी ही धर्म-निष्ठता का वाहुल्य होगा। हृदय तो सदैव पानी के समान ढलान तथा निचली भूमि की ग्रोर प्रवाहित होगा पर विवेक रूपी पम्प के दबाव से उसकी वृत्ति को उर्ध्वगामी करना पड़ता है।" इसी कविता मे ग्रागे कवि ने प्रगतिवाद के स्वरो को मुखरित करते हुए कहा कि "ए रजाई में सोने वालो ! कड़ाके की सर्दी ग्रौर बरसात मे जरा उठकर तो देखो कि बाहर निराश्रितो पर क्या बीत रही है ? कवि ग्रागे कहते हैं कि वह परमात्मा मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, देवालय से हटकर ग्राज दरिद्रनारायण के रूप मे घास-फूस की झोंपड़ियो को देखने के लिये घूम रहा है।"

इस सकलन की कविता "लालण लकाउ तु हिंजो" (दाता (प्रियतम) तेरा दिव्य दर्शन) मे कबीर की "लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल" के समान

सर्वव्यापी ब्रह्म के सार्वभौमिक अस्तित्व की उद्घोषणा की है। परमात्मा को उन्होंने सिन्धी के ठेठ शब्द लालण से सम्बोधित किया है।" हे प्रियतम ! सर्वत्र मुझे तुम्हारे दिव्य दृश्य के दर्शन होते है, अगर शत्रु भी मेरे सम्मुख आ जाता है तो उसमे भी मुझे तुम्हारे ही दर्शन होते हैं।" इस कविता मे उपनिषदों के सर्ववाद के दर्शन होते हैं तथा सिन्धी साहित्य का 'छायावाद' 'बेवस' की रचनाओं से ही मुखरित हुआ है। वैदिक काल के ऋषि मनन्-चिन्तन मे इस तथ्य पर पहुंचे कि ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है। माया के आवरण से सासारिक लोग उसे भिन्न-भिन्न रूपों में देखते हैं। ज्ञानियो ने इस तथ्य को सर्प-रज्जु भ्रम अर्थात् रस्सी में साप का भ्रम की संज्ञा देकर समझाया हैं। उपनिषदों ने उसे सर्ववाद की संज्ञा दी। कबीर ने अव्यक्त और अशरीरी ब्रह्म के साथ प्रणय-भावना प्रस्थापित की। तुलसी ने "केशव कही न जाय का कहिये" जैसे पदों को सर्जित कर रहस्य-भावना उद्घाटित की। रहस्यवाद के साथ सर्ववाद का सामजस्य कर आधुनिक कवियो ने लाक्षणिक प्रयोगों, अप्रस्तुत विधानों और अमूर्त उपमानों को लेकर छायावाद का सूत्रपात किया। जिस प्रकार हिन्दी साहित्य मे छायावाद के दर्शन् जयशंकर प्रसाद के झरना, आंसू, लहर और कामायनी में होते हैं, उसी प्रकार सिन्धी साहित्य मे छायावादी प्रवृत्तियो के दर्शन 'बेवस' की सामूंडी सिपूं" (समुद्र की सीपियाँ (1929 ई०) तथा शीरी शेर (सुमधुर काव्य–1943 ई०) से होते हैं।

सामूंडी सिपूं की मूल प्रति 1929 ई० मे कौड़ोमल सिन्धी साहित्य मण्डल हैद्राबाद (हैदराबाद) सिन्ध की ओर से प्रकाशित हुई थी। उसमे मूलरूप से चावालीस कविताएं हैं, किन्तु बाद में 1984 ई में प्रकाशित 'बेवस शताब्दी ग्रंथ' में सामूंडी सिपूं के अन्तर्गत केवल छब्बीस रचनायें सकलित की गई है। बेवस की प्रमुख रहस्यवादी कविता 'रूहरूपी राणीअ जो इन्सानी रथ मे पधारजण' (आत्मा रूपी रानी का मनुष्य देह रूपी रथ द्वारा पदार्पण) शीर्षक कविता सामूंडी सिपूं मे सन् 1929 मे प्रकाशित हुई, किन्तु बाद की आवृत्तियों में इस कविता का शीर्षक 'शह सवारी' (विराट की रथयात्रा) मे परिवर्तित किया गया। इस कविता को अन्य कविताओं के साथ 'शीरीं शेर' में प्रकाशित किया गया। इस कविता मे लाक्षणिक प्रयोगों से एक अमूर्त विधान को मूर्त रूप दिया गया है। विराट की रथ-यात्रा पृथ्वी-मंडल पर पदार्पण करनेवाली है, वायु अपने वेग से गली-कूचो के पंख-पत्तों को उड़ाकर सफाई के अभियान मे रत है, वर्षा ने बूंदो के रूप मे इत्र

छिड़काया है और बसंत ने फूलों के अक्षुण्ण भण्डारों का विस्तार कर दिया है, टहनियों ने डाण्डिया नृत्य प्रारम्भ किया है तथा पत्ते विराट की प्रिय और पुनीत रथ-यात्रा के स्वागत में तालियाँ बजा रहे हैं। विद्युत रूपी नर्तकी ने उन्मुक्त हृदय से नृत्य प्रारम्भ किया है, अरुणोदय ने रथ-यात्रा के मार्ग को स्वर्णिमा से मण्डित कर दिया है।

इस कविता में प्रकृति में मानवीय तथा ईश्वरीय भावों का आरोप कर कवि ने कल्पना की उडान, भाव-प्रवणता, और ध्वन्यात्मकता का सुन्दर समावेश किया है। क्योंकि यह पुस्तक कवि की प्रारम्भिक कृतियों में से है और सन् 1929 में प्रकाशित हुई है, अतः इसकी कुछ कविताओं में फारसी के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है *यथा*—महर (प्रातः काल), शम्स (सूर्य), कमर (चन्द्रमा), फुर्कत (वियोग), सेम (रजत), जमाल (सौन्दर्य), फलक (आकाश), बहर (समुद्र), माहि-ए-बदर (चौदहवीं का चान्द), तुख्म (बीज), वसुल (संयोग) आदि।

'बेवस गीतांजली' कवि की भक्ति भावना, देश-प्रेम तथा विविध रचनाओं का सकलन है इसमें कुल छियासठ कविताये हैं, जिसमें प्रथम कविता 'तोखे छा चऊं?' (तुझे क्या कहूं?), दूसरी कविता 'तुंहिंजी महिमा अपर अपार' (तुम्हारी महिमा अपरम्पार), तीसरी कविता गुण गाया' (गुण गाऊं), चौथी कविता 'दया जो भण्डार' (दया का भण्डार) आदि हैं। संकलन की आधी से अधिक कवितायें कृष्ण और राम भक्ति की कवितायें हैं। देश-प्रेम सम्बन्धी कविताएं तिलक स्तुति, गांधी जन्म, स्वदेशी, ग्राम सुधार आदि हैं। विविध के अन्तर्गत जुआ, शोक-शैतानी-शराब, एकान्त, स्त्री महिमा, सुख जीवन मोकिलाणी (विदाई), फ़ना में बका, (नश्वरता में नित्यता), सुख दृष्टि, प्रेमगीत तथा गंगा जूं लहर्यूं (गंगा की लहरें) हैं। पुस्तक के प्राक्कथन के लेखक सिंधी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार फतहचन्द वासवाणी हैं।

पुस्तक की अधिकतर रचनाएं स्वतंत्रता संग्राम के समय समवेत मे गाये जाने-वाले गीत हैं अथवा धार्मिक और सामाजिक उत्सवों के समय गाने योग्य रचनाएं हैं। ये रचनायें राग प्रभाती, भैरवी, कानरा, राग पहाड़ी, कव्वाली आदि में स्वरबद्ध की गयी हैं। ये रचनायें किसी एक प्रकरण को लेकर विकसित की गयी हैं,

जैसे राम नाम, अवतार, रामजन्म, दशहरा, लंकापति की पराजय, राम का अयोध्या आगमन, श्रीकृष्ण स्तुति. कृष्ण जन्म स्थान, मुरली मनोहर, ब्रजबल्लभ, जन्माष्टमी, कृष्ण-सुदामा-मिलन, कृष्ण जन्म, बांसुरी, गीता-जयंती, होली, भवजल गुरु गोविन्द सिंह आदि ।

इससे पूर्व सिंधी की भक्ति-रचनाओं में मुसलमान कवियों – शाह अब्दुल लतीफ, सचल सरमस्त आदि ने उस परमात्मा को अल्लाह, दिलदार, सुपिरी (सुप्रिय), कान्ध (कन्त), साईं (स्वामी का अपभ्रंश) महबूब, हबीब, जानी, होत (प्रियतम) आदि नामों से सम्बोधित किया था । बेवस गीतांजली में 'बेवस' आधुनिक काल के कृष्ण-भक्त कवियों के रूप में उभर कर आये हैं तथा उन्होंने परमात्मा को हिन्दी और संस्कृत के विख्यात नामों से सम्बोधित किया है यथा-आदि-पुरुष, स्वामी, श्याम, गिरिवर गिरधारी, हरि, सुन्दर श्याम, नारायण, गोपाल, विष्णु, गोविन्द, बनवारी, मोहन, मुकुन्द, मुरारी, मुधुसुदन, मुरलीधर, केशव, कुंजविहारी, कृष्ण कन्हैया, विश्वनाथ, नन्दनन्दन, निरंजन, पीताम्बर, ब्रज बल्लभ, द्वारकापति आदि । 'बेवस' के पूर्ववर्ती कवि फारस के मुस्लिम भक्तों को ही प्रधानता देते थे तथा वहा की गाथाओं को ही अपने काव्य में स्थान प्रदान किया करते थे । 'बेवस' ने अपनी भक्ति-रचनाओं में रामायण, महाभारत, तथा श्रीमद्‌भागवत के प्रकरणों को प्रधानता दी है, जिनमें प्रमुख प्रसंग अजामिल, सुदामा, ध्रुव, नृसिंह, प्रह्लाद, गजग्राह, अहिल्या, रावण, आदि है । पंजाब के समीप होने के कारण सिंध के हिन्दुओं पर सिख धर्म तथा गुरु ग्रंथ साहब की वाणी का गहरा प्रभाव रहा है, यह प्रभाव 'बेवस गीतांजली' में भी स्पष्ट परिलक्षित होता है । जिस प्रकार राम और कृष्ण की स्तुति की गयी है, उसी प्रकार 'बेवस गीतांजली' में गुरुनानक तथा गुरु गोविन्द सिंह की स्तुति में भी रचनायें प्रस्तुत की गई हैं । उन्होंने गुरु नानक को भवसागर से पार उतारनेवाले स्वामी की संज्ञा दी है तथा श्री गुरु गोविन्द सिंह को धर्म के अवतार के रूप में प्रस्तुत कर सिंधी समाज की धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया है ।

पुस्तक की विविध रचनाओं में महात्मा गांधी द्वारा संचालित स्वदेशी आन्दोलन तथा ग्राम-सुधार के साथ-साथ अन्य सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करने के लिए भी रचनायें संकलित की गयी हैं । इन रचनाओं में 'देशी हुनुर' (देशी हस्त कला) को प्रोत्साहन देने सम्बन्धी कविता की रचना सन् 1920 ई. में की गयी है जिसमे

'बेवस' ने कहा है कि मेरी लाश के कफ़न में अगर विदेशी धागा या डोरा लगा होगा तो मेरा शव भी शंका से शरमा जायेगा। देश मे ग्रामीण विकास की योजनायें अब आकर बनाई गयी हैं, 'बेवस' ने परतंत्र भारत में ही ग्रामीण विकास की कल्पना की थी तथा 'ग्राम सुधारो' शीर्षक कविता में अपने भावो को व्यक्त किया है। कविता में ग्रामीण हस्तकला के विकास, प्रौढ शिक्षा, खुले हवादार मकानों का निर्माण, पचायती राज आदि पर प्रकाश डाला गया है।

'शेर बेवस' कवि की उनियासी कविताओं का सकलन है। इसके द्वितीय संकलन का प्रकाशन पद्मश्री हुन्दराज 'दुखायल' द्वारा बेवस वाणी मंदिर के तत्वावधान में सन् 1968 में हुआ। इस सकलन में सन् 1929 में प्रकाशित 'सामूंडी सिपूं' की छब्बीस कविताओ को भी स्थान दिया गया है। यह पुस्तक बम्बई तथा गुजरात विश्वविद्यालयों की बी. ए. परीक्षा के लिए पाठ्यपुस्तक के रूप मे मान्यता प्राप्त कर चुकी है। 'शेर बेवस' कवि की प्रमुख और महान कृति है, जिसमें काव्यकार के अतिरिक्त वे एक महान् दार्शनिक के रूप में हमारे सम्मुख आ जाते हैं। रचनाओं में आशा का एक नया सदेश है तथा गीता के सदेश "कर्मण्ये वाधिकारेस्तु मा फलेषु कदाचन्" की भावना प्रतिबिम्बित होती है। 'बेवस गीताजली' में जहा कवि एक साधारण भक्त के समान गीत रचना मे लीन है तो 'शेर बेवस' में कवि की कल्पना प्रौढावस्था को प्राप्त कर चुकी है। भक्ति के साथ उनका दार्शनिक पक्ष भी प्रबल होता गया है। उसकी साधना मूर्त से अमूर्त की ओर, सगुण से निर्गुण की ओर, वचन से कर्म की ओर, अनेकत्व से एकत्व की ओर अग्रसर हो चुकी है। अपनी कविता 'जोत' (ज्योति) मे कवि ने परमात्मा को जगत में आत्मिक ज्योति को प्रज्ज्वलित करनेवाले ज्योति-पुंज के रूप मे सम्बोधित करते हुए कहा है कि तुम ही आत्मप्रकाश से तारों और नक्षत्रों को प्रकाशमान करते हो! तुम अरूप (निर्गुण) होते हुए भी रूप-मन्दिर में प्रेम की अग्नि के दीपक को देदीप्यमान करते हो तथा बिन्दु के समान तुम्हारा कोई घनत्व नही है, फिर भी रेखागणित के सिद्धान्तों के अनुसार एक रेखा की संरचना बिन्दुओं के समूहों से ही तो सम्भव है। तुम बिन्दु के समान शून्यवासी हो और सर्वव्यापक हो। बिन्दु के समान उस परमात्मा की कोई दीर्घता नही है, विस्तार नहीं है, फिर भी वह परमात्मा खण्ड बिन्दु रूप में हर आकृति में, हर रेखा मे सर्वत्र विद्यमान है। परमात्मा अपने बिन्दु रूप को आहूति

देकर सांसारिक लोगो के हृदयो मे अपना ग्रासन स्थापित करता है।[1] शताब्दियो पुरानी धारणा को रद्द करते हुए कवि कहते हैं कि ससार महाजाल या फांसी का फन्दा नहीं है, यह तो विराट द्वारा निर्मित ग्रात्मोत्सर्ग का स्थल है। यहां कुर्बानी देनेवाला व्यक्ति ही परमात्मा के नजदीक पहुच पाता है। यहा हीर ग्रौर रांभा की प्राचीन कथा का उल्लेख करते हुए कवि कहते है कि हजारा नगर के राजकुमार राभन ने ग्रपनी प्रेमिका हीर को प्राप्त करने के लिए राज-पाट का परित्याग कर दिया ग्रौर रावी नदी के किनारे भैसो को चरानेवालों के पास चरवाहे के रूप में नौकर बनकर काम किया।

पुस्तक मे बहार (बसंत) हिमालय, ताजमहल, इन्सान, जिन्दगी, मौत, ग्राजादी, गुलामी, कुर्बानी ग्रादि विषयो पर रचनाएं प्रस्तुत की गयी है, इसके ग्रतिरिक्त पौराणिक विषयों पर शकुन्तला द्वारा दुष्यन्त को लिखे हुए प्रेमपत्र, विश्वामित्र के पश्चाताप, ऋषि ग्राश्रम, श्रवणकुमार ग्रादि विषयो पर भी काव्य, रचनाए प्रस्तुत की है।

यद्यपि ग्राज के मापदण्डो के ग्रनुसार 'वेवस' प्रगतिशील कवि नही थे फिर भी उन्होने काल ग्रौर देश की मांग के ग्रनुसार कुछ ऐसे विषयो पर भी लेखनी चलाई है, जिनसे उनकी प्रगतिशीलता का परिचय मिलता है। वे कविताए हैं—गरीबो की भोपड़ी, श्रमिक, मजदूरिन, धनवान, (साहूकार) तथा हाय किसान। इन कविताग्रो द्वारा कवि ने सर्वहारा, निर्धन, मजदूर ग्रौर श्रमिक वर्ग के प्रति ग्रपने

1. जगत में ग्रात्मिक जोती जगाई जोतवारा थो,
मुत: प्रकाश पंहिंजे सां भरी तारा सितारा थो॥
ग्ररूपा! रूप मन्दर में जलाए प्रेम जी ग्रगिनी,
दियण लाई ग्राप ग्राहुति रची दिलजा दुग्रारा थो॥
ग्रपारी ग्रादि खां थी, थो बखीं वेग्रन्त रचना मां,
थी वेरंगी रचाईं रंगपुर में रंग-न्यारा थो॥
सिफाती वेसमें साईं! पसी थो हुस्न जातीग्रसे,
रचे वहदत मंभां कसुरत करी केदा पसारा थो॥

उद्गारों का उद्घोषण कर धनवान पर यह आरोप लगाया है कि ऐ धनवान ! तुम्हारे दुशाले का लाल रंग दरिद्रों के रक्त की लालिमा से ही रंजित है, तुमने जोंक की तरह उनका खून चूसा है तथा अब अपने को धनवान और स्वामी कहलाते हो ? तुमने अपनी लोलुपता के कारण कइयों को कंगाल और कर्जदार बनाया है।

> लाल थ्यो तुंहिजो दुशालो कहिंजे लोह छाणमां ?....
> की अ न रत-चूसे जौर खे लोक प्यो 'साईं' सदे....

'शेर बेवस' पुस्तक में कवि की दार्शनिक धारणाओं, आध्यात्मिक मान्यताओं, गूढ विचारों को स्पष्ट करने के लिए पचास पृष्ठों की कुंजी परिशिष्ट के रूप मे अन्त मे दी गई है। अगर यह कुंजी प्रकाशित नही की गई होती तो 'बेवस' की कई धारणाओ, मान्यताओ एवं पदों का अर्थ साधारण पाठक के लिए गुत्थी के रूप मे अस्पष्ट ही रहता।

सिन्धी साहित्य मे बाल साहित्य व ...ठ पुस्तकों की अत्यन्त कमी रही है। अध्यापक के नाते 'बेवस' बच्चों के बीच में उठते-बैठते थे, उनकी क्षण-क्षण बदलती भाव-भंगिमा, रुचि तथा व्यवहार से वे पूर्णरूपेण परिचित थे। 'मौजी गीत' मे उनकी पन्द्रह बाल-कविताओं का संकलन है। इन कविताओं का प्रकाशन सन् 1935 से ही सिन्धी बाल पत्रिका 'गलफुल' मे प्रारम्भ हो गया था। तीन वर्षों की अल्प अवधि मे ये कवितायें इतनी लोकप्रिय हो गयी कि मानो सिन्धी बाल-साहित्य मे एक नया आन्दोलन-सा आ गया। उनकी कविता 'रेल' का कई बार पाठशालाओ मे वार्षिकोत्सव आदि के समय पर मंचन भी हुआ 'कागज की नाव' शीर्षक कविता को बच्चे वर्षा में कागज की नावें तैराकर हर्षोल्लास से झूम-झूम कर गाते। गुब्बारा कविता को गाते हुए दो बच्चे अपने गुब्बारे में मुंह से हवा भरते और सस्वर पाठ से श्रोताओ को मन्त्रमुग्ध कर लेते। सावन में झूलो के समय झूला शीर्षक कविता सम्वेत स्वर से गाते। प्यारा घोडा कविता मे एक छोटे मुन्ने का अपने घोड़े के प्रति लगाव का वर्णन है। सिन्धु नदी के तट पर तथा अरब सागर के किनारे पर विशाल रेत के प्रकृति के खुले प्रांगण में छुट्टियाँ मनाने के लिए बच्चे अपनी पाठशालाओ से पहुंच जाते तथा बाल-सुलभ रेत के घर बनाते और खण्ड

के ऊपर खण्ड (मंजिल पर मंजिल) बनाते जाते।" घरौदा कविता मे समुद्रतट की रेत के विस्तार का जो सजीव वर्णन किया है वैसा हिन्दी तथा सिन्धी साहित्य मे दुर्लभ है। कवि का एक रूप दार्शनिक का भी है, उसकी यह प्रवृत्ति अनायास ही उमड पड़ती है। रेत के घरो को देखकर फेनिल सागर पानी मे से अपना सिर बाहर निकालकर बच्चो की नादानी पर न्यायाधीश की तरह उन्हे अपना निर्णय देता है कि हे नादान बच्चा! मैं उद्वेलित सागर हूँ, मेरी एक लहर से तुम्हारे घरो का नामोनिशान खत्म हो जायेगा। इस कविता मे कवि ने निर्माण मे नश्वरता तथा वात्सल्य में शान्ति-रस का ऐसा अनूठा सामंजस्य स्थापित किया है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

> रासि जर्दहियियो झुगीजुडी, तर्दहिं खुशीअ जी खिल छिडी।
> खूब खुशीअमें बार दिसी, समुण्ड उभाणो सिसी कढी॥
> ध्यान घरियो नादान बार, सागर आहियां छोलीमार।
> हिकछोली आणीदुस आउ, घर जो वञी न रहन्दो नाउ॥

कवि ने छोटे बच्चों की रुचि, हावभाव, मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओ, हसने, खेलते-कूदने का जितना सजीव वर्णन किया है वैसा सिन्धी साहित्य मे अन्यतम है। 'बेवस' के शिष्य प्रोफेसर हरिदिलगीर की भी कुछ कवितायें इस संकलन मे दी गई है। हरि दिलगीर की कविताओ में बालसुलभ आचरण की मनोहरी छटा का रसास्वादन होता है। वे सिन्धी साहित्य के मूर्धन्य कवि, विचारक एव प्रसिद्ध शिक्षाविद् है। मौजीगीत पुस्तक में अत्यन्त ही सुन्दर चित्रो द्वारा कविताओ की पृष्ठभूमि तथा कथानक को और अधिक हृदयग्राही एवं बालोपयोगी बनाया गया है।

जैसा कि मैं उपर कह आया हूँ कि सिन्ध के हिन्दू जनमानस पर गुरु नानक तथा सिख धर्म का गहरा प्रभाव रहा है 'बेवस' ने आठ भागो मे 'गुरु नानक जीवन कविता' पुस्तक की रचना की है। पुस्तक की प्रारम्भिक पंक्तियां गुरु नानक को अवतार के रूप में प्रस्तुत करती हैं जिनका उद्देश्य हिन्दू धर्म की दुर्गति को रोकना तथा मुस्लिम शासकों द्वारा साम्प्रदायिकता के आधार पर निर्धारित नीतियों का पालन करते हुए हिन्दुओ को कष्ट पहुँचाना था। प्रथम भाग मे गुरु

नानक का जन्म, बाल्यावस्था, उसके अवतार होने के लक्षण, बाल्यकाल मे समाधिस्थ अवस्था मे रहने की प्रवृत्ति, यज्ञोपवीत संस्कार, साधु सेवा प्रवृत्ति का वर्णन किया गया है। द्वितीय भाग मे उनकी निःस्पृह वृत्ति, वैराग्य, काज़ियों के साथ शास्त्रार्थ तथा इस्लाम धर्म की सच्ची व्याख्या का वर्णन है। तृतीय भाग में गुरु के दो शिष्यो बाला और मर्दाना का विवरण, सेठ भागू और लालू को चमत्कार दिखाने की वार्ता, एवं भक्ति मार्ग की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। इस भाग में कवि ने अत्यन्त ही सुन्दर रीति से हिन्दू-मुस्लिम एकता के सूत्र का निर्वाह किया है। गुरु नानक खत्री थे तथा उनका शिष्य मर्दाना रबाबी जाति का मुसलमान था। चौथे भाग मे गुरु नानक का अपनी शिक्षाओं के प्रचार हेतु देशाटन का वर्णन एवं विभिन्न धर्मों तथा पथों के प्रमुखों से की गई ज्ञान-गोष्ठियों का विवरण है। पांचवें भाग मे अस्पृश्यता के विरुद्ध उनके विचारों को मूर्तरूप दिया गया है तथा प्रत्येक धर्म-कार्य मे की जानेवाली आरती क्या है, उसकी व्याख्या की गई है। छठे भाग मे गुरु नानकदेवजी की यात्राओं का विवरण, साम्प्रदायिकता के विरुद्ध चर्चा आदि का उल्लेख है। सातवें भाग मे उनकी कश्मीर तथा काबा की यात्रा का वर्णन और अपने ग्राम तलवंडी मे वापसी का उल्लेख है। अन्तिम भाग मे भाई लहना (गुरु अगद देव) से भेंट, उसे गुरु गद्दी सौंपने, अपने पुत्रों को प्रबोध देने तथा इस नश्वर शरीर के त्याग करने का वर्णन है। पूरी रचना इतिवृत्तात्मक शैली मे है जिसमें गुरु नानक के जीवन एवं दर्शन का वर्णन तथा व्याख्या है। कल्पना और भाव-सूक्ष्मता का अभाव है। प्रत्येक छंद के अन्तिम चरण मे "गुरु नानक देव सचो पातशाह" (सच्चा बादशाह) की आवृत्ति कर गुरु नानकदेव जी की गरिमा तथा प्रमुत्व पर बल दिया गया है। पुस्तक से कवि की अन्तरात्मा पर सिख धर्म की शिक्षाओं की अमिट छाप प्रतिबिम्बित होती है। श्री गुरु नानकदेवजी ने संत कबीर के समान ही अनहद शब्द की व्याख्या की थी। वास्तव में सभी धर्मों मे अनहद शब्द के अभ्यास को ही प्राथमिकता दी गयी है। उपनिषदों में उसे उद्गीत या आकाशवाणी कहा गया है, अंग्रेजो ने इसे वर्ड या लोगास कहा है, चीनियों ने इसे ताओ कहा है, कबीर तथा गुरु नानक ने इसे 'शब्द' कहा है, मुसलमान फकीरों ने इसे बांग-ए-आसमानी या निदारा-सुल्तानी आदि शब्दों से सम्बोधित किया है। फारस से भारत मे सूफी मत का आगमन सिन्ध प्रदेश के द्वारा हुआ था, अतः सिन्ध प्रदेश मे हिन्दू एवं मुस्लिम जन समुदाय पर धार्मिक सहिष्णुता एवं अन्य धर्मों के प्रति

आदर की प्रवृत्ति आज भी विद्यमान है। 'गुरु नानक जीवन कविता' से कवि का यह संदेश स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रत्येक कवि की कृतियों पर उसके समाज, काल, समकालीन कवियों, विचारकों, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों, सीमान्त प्रदेशों के घटना-क्रम का प्रभाव अनायास ही चित्रित हो जाता है। हमारे इस महान कलाकार की प्रारम्भिक कृतियों में या तो प्रकृति-चित्रण है या प्रार्थना-परक शैली में पृथ्वी के नानारूपों को निरख कर विस्मय से अभिभूत होकर प्रकृति की पल-पल परिवर्तित होती छटा का मनोहारी अंकन है। वेवस गीतांजली की भूमिका के लेखक फतेहचंद वासवाणी ने कवि की कविताओं के विकास-क्रम को तीन कालों में विभक्त किया है। प्रथम काल प्रकृति के पवित्र प्रेम, हृदय, के मनोवेगों से उसके तालमेल तथा प्रार्थनापरक रचनाओं का काल है। इस काल में कवि ने सन् 1929 में 'शीरी शेरे' तथा 'फूलदानी' की रचना कर अपनी भावनाओं को प्रकट किया है। उनकी कविता 'कुदरत वारा' (कुदरतवाला) ने इतनी ख्याति प्राप्त की कि सिंध के हिंदू पाठशालाओं में इस कविता का प्रार्थना-गान के रूप में सस्वर पाठ होता था। दूसरी कविता जो इसी तरह से ख्याति प्राप्त कर रही थी वह थी 'धणी अ दरि वेनती' (धणी=पति अर्थात् परमात्मा, दर=दरवाजा, द्वार, दरि=द्वार पर, वेनती=विनती, प्रार्थना अर्थात परमात्मा के द्वार पर विनती)। इस काल की अन्य प्रकृति-चित्रण की कविताएँ हैं, आसमान (आकाश), कारी घटा (काली घटा), नदी (नदी), बहार (बसंत), बरसात (वर्षा), बाग ऐं बहार (बगीचा और बसंत), खुड़लबीतो (खद्योत), सहाई रातड़ी (पूर्णिमा की रात्रि), मुखिड़ीअ जी बेताबी (कली की बैचेनी) आदि।

विकास-क्रम के द्वितीय चरण में कवि की रचनाओं पर सर्वप्रथम रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा बंगला साहित्य के लेखकों तथा बाद में महात्मा गांधी का प्रभाव परिलक्षित है। कवि ने परतन्त्र भारत के गुलाम देशवासियों को जाग्रत करने का प्रयास किया तथा उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए देश-भक्ति से ओत-प्रोत कविताओं का सृजन किया। उस काल की प्रसिद्ध कविताएँ हैं—स्वदेशी, ग्राम-सुधार, तिलक स्तुति, गांधी जन्म, अछूत उद्धार, गांधी पद, तिलक पद, तिलक आरती, बेरोजगारी, आजादी, एकता किथे

(एकता कहा), गांधी, साबरमती अजो सन्त (साबरमती का सन्त) आदि। इस काल में कवि की ओजस्वी कविताएँ स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेनेवाले युवकों का सम्बल और सहारा बनी। देश-भक्ति की भावनाओं से प्रेरित कई युवक कवि के शिष्य बन गये। प्रभातफेरियों में स्वतन्त्रता संग्राम के आन्दोलन के समय हर्षोल्लास से स्वतन्त्रता सेनानी अपनी गिरफ्तारी देते थे तथा कारागार के सीखचों के पीछे भी मस्ती के साथ इन कविताओं को गाते थे।

कृतित्व के विकास-क्रम के तृतीय चरण में आध्यात्म दर्शन का उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। जहां प्रथम चरण में कवि ने प्रार्थना-परक कविताओं से आत्मानुभूति के मार्ग पर अग्रसर होना चाहा है वहाँ तृतीय चरण की रचनाओं में आत्मा और परमात्मा के सानिध्य, सच्चरित्र जीवन तथा जन-सेवा पर बल दिया है। कवि का कोमल मन अपने जीवन के अन्तिम दिनों में (सन् 1946-47 के आसपास) साम्प्रदायिक दंगों, मानव द्वारा मानव पर अत्याचारों, अंग्रेजों की हठधर्मिता से इतना खिन्न हो उठा था कि उन्होंने काव्य-सृजन ही बंद कर दिया। वे अपना समय 'ज्ञान-बाग' नामक अपनी वाटिका में सत्संग व प्रवचन में व्यतीत करते तथा दिन के समय रोगियों के लिए होम्योपैथिक शफाखाने में उपचार करते। एक महान् कवि ने साम्प्रदायिक घटनाओं से खिन्न होकर साहित्य-सृजन बन्द कर दिया तथा अन्तिम दिनों में कृष्ण-भक्ति, आत्मानुभूति के अभ्यास तथा जन-सेवा में अपने-आपको व्यस्त किया और कुछ ही महीनों के बाद इस पार्थिव शरीर का 23 सितम्बर, 1947 को लरकाना (लाड़काणा) शहर में परित्याग कर दिया।

3

प्रकृति–चित्रण

सिन्धु देश मुग्रनि-जो-दडो (मोहन जोदड़ो) की सभ्यता का प्रदेश है, जिसे प्रागैतिहासिक काल मे सौवीर प्रदेश से सम्बोधित किया जाता था तथा यह ग्राभीर जाति का मूलस्थान है, जिसके दक्षिण मे ग्ररब सागर, पश्चिम मे लकी व हालार की पर्वत-मालाएं, पूर्व में थर (थार) का मरुस्थल तथा उत्तर मे पंजाब व मुल्तान हैं। इसके मध्य क्षेत्र से सिर की माग के समान प्रवाहित कल्लोलिनी सिन्धु नदी है, जिसे देखकर विदेशी ग्राक्रमणकारियो को एक बार भ्रम हो गया था कि यह नदी है या सागर ! बड़े-बड़े पोत सिन्धु नदी में चलते थे व ग्ररब सागर द्वारा विदेशों में वाणिज्य हेतु मध्य यूरोप तक जाते थे। ऋग्वेद की ऋचाग्रो का सृजन-क्षेत्र सिन्धु-तट ही माना जाता है। भरत के मामा द्वारा रामायण-काल मे शासित प्रदेश, महाभारत काल में सिन्धु-पति जयद्रथ द्वारा शासित क्षेत्र सिन्धु देश है। ग्ररबों के ग्राक्रमण से पूर्व इस प्रदेश पर सिन्धी ब्राह्मण राजाग्रों का राज्य था। सन् 711 में ग्ररबो के सेनापति मुहम्मद-बिन-कासिम ने सिन्ध पर ग्राक्रमण किया, जिसमें सिन्ध के बौद्ध धर्मावलम्बियो ने ब्राह्मण राजा दाहरसेन के साथ वंचना की जिसके फलस्वरूप ब्राह्मण वंश का राज्य समाप्त हुग्रा तथा ग्ररबो तथा मुसलमान शासको का शासन ग्रारम्भ हुग्रा।

सिन्ध की उर्वरा भूमि, सुन्दर सुडौल लम्बे कदवाले पुरुष, गौरांगना भामाएं, परिश्रमी और प्रखर-बुद्धि सिन्धी जन-समुदाय विश्व के कोने-कोने में फैला हुआ है।

हमारे कवि 'बेवस' का जन्म सिन्धु नदी के दाहिने किनारे पर अवस्थित लाड़काणा (लरकाना) नगर मे हुआ था, जहाँ से कुछ दूर मुग्रनि (मोहन)-जो-दड़ो की विशाल, उन्नत सभ्यता के अवशेष आज भी सिन्धु-घाटी सभ्यता के वैभव और ऐश्वर्य की अमर गाथा सुना रहे हैं। लाड़काणा के चावल के उन्नत बीज व चावलों की सघन खेती आज भी विश्व-विख्यात है। कवि 'बेवस' ने प्रकृति के नाना रूपों — कोमल-पुरुष, सुन्दर-बीभत्स, शान्त-चचल, रक्षक-भक्षक का दिग्दर्शन किया। नगरीय एव ग्राम्य जीवन की अनुभूतियो की अमिट छाप उनकी दिनचर्या एवं कृतित्व पर रही है। अरब सागर के तट पर टहलते हुए उन्होने अगाध फेनिल जलधि के विस्तार को देखा, सिन्धु नदी का शान्त कलरव सुना तो, वर्षा ऋतु में उसके प्रलयंकारी रूप भी देखे व सागर मे समाहित होने का मनोमुग्धकारी चित्र भी देखा।

आदिकाल से प्रकृति नटी के प्रांगण में मानव ने आरोहण व अवरोहण के गीत गाये हैं, प्रकृति के साहचर्य में कन्दमूल का भक्षण किया है तथा विरूप वातूल मे गिरि-कन्दराओ में आश्रय लिया है, उसके अलौकिक और विस्मयकारी रूप देखे हैं। सहज विस्मय से अभिभूत होकर मानव ने अनन्तकाल से ओंकारनाद का श्रवण किया है, अर्द्धचन्द्र की आकृति में उसने अपनी प्रेयसी की अवगुंठित मुखाकृति का अभेद आरोप किया है, पर्वतमालाओं से कल-कल नाद करती हुई प्रवाहित सरिता को अपने प्रियतम सागर से मिलने हेतु व्याकुल होकर भागते हुए चित्रत किया है। 'बेवस' का प्रकृति-चित्रण आधुनिक काल के सिन्धी साहित्य में अद्वितीय है। प्रकृति-चित्रण मे उनकी प्रसिद्ध रचनायें हैं : नदी, बरसात, बहार, गुल, हिमालय, स्रष्टा (कुदरतवारा), शह सवारी - (विराट की रथयात्रा) आदि।

प्रकृति-वर्णन को विवेचन की सुविधा की दृष्टि से कई वर्गों में विभाजित किया गया है। रीतिकाल में सेनापति तथा आधुनिक हिन्दी साहित्य मे प्रसाद व पन्त का प्रकृति-वर्णन भाव एवं भाषा की दृष्टि से अद्वितीय है। आलंबन के रूप मे प्रकृति-

चित्रण उच्चकोटि का माना जाता है, जिसमें प्रकृति के शुद्ध रूप का वर्णन होता है और कवि स्वयं प्राश्रय बनकर सूक्ष्म द्रष्टा के सदृश पल-पल परिवर्तित प्रकृति के नाना रूपों को निरख भाव-विभोर हो उठता है। उसकी आत्मा प्रकृति की सुषमा की अनन्तता, विविधता व सुकुमारता में तल्लीन होकर मुक्तावस्था को प्राप्त करती है। आलम्बन के अतिरिक्त कभी-कभी कवि मानवीकरण का सहारा लेकर मानवीय भावनाओं का प्रकृति में अभेद आरोप करता है। प्रकृति-चित्रण प्रतीकात्मक रूप में, बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में, उपदेशिका के रूप में तथा रहस्यवादी एवं आलंकारिक रूप में भी किया है। 'बेवस' से पूर्व सिन्धी साहित्य के भक्तिकालीन कवियों में शाह अब्दुल लतीफ (1689–1752 ई०) ने प्रकृति के सुकुमार एवं परुष, उग्र एवं रम्य नाना रूपों का विशद एवं विविधता पूर्ण वर्णन किया था।

'बेवस' ने बहार (बसन्त) गुल (पुष्प) हिमालय, बरसात, सहाई रात्रि (ज्योत्स्ना) आसमां (आकाश), त्रुंड़्यबीनो (जुगनू) आदि कविताओं में प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया है। बसन्त ऋतु पर कवि की दो रचनाएं हैं एक उसकी पुस्तक 'शेर बेवस' में व दूसरी 'शीरीं शेर में'। बसन्त ऋतु के आगमन से मुकुलों ने मुख खोल दिया है, उनके गले में ओस-बिन्दुओं ने मोतियों की मालाएं पहना दी हैं।[1] पुष्प राजा की फुलवारी के सिंहासन पर देख बुलबुल ने स्वागत के गीत गाए और वियोग काल में व्यतीत विगत-सम्बन्धी वार्तायें की।[2] दसों दिशाओं में *अलौकिक सुगन्ध की व्याप्ति है; पक्षी, पेड़ पुष्प, अपनी यौवनावस्था के* चरमोत्कर्ष पर है। पृथ्वी के धरातल पर हरीतिमा की मखमली चादर बिछी हुई है, जिसके सुरम्य दृश्य से आखें तर हो जाती हैं। पुरवैया के चलते ही मिट्टी से भी कस्तूरी जैसी सुगन्ध उठने लगती है।

---

1 इओ मौसम बहारीअ खां, तब्बसुम आहि मुखिड़युनि जो,
गले में हार गुल पातो, डिनो शबनम जे मोत्युनि जो।

2 चमन जे तख्त ते वेठल, डिसी गुल शाह खे बुलबुल,
मचायो मरहबा जो हुल, बिरह जे सूब बात्युनि जो।

अपनी कविता 'आसमां' (आकाश) में कवि ने आकाश को रहस्यमय बताया है। आसमां की ओढनी पर सलमे-सितारों का कसीदा किया हुआ है जिसमे तारक-गण रूपी मोती जड़े हुए हैं। सूर्य के तीक्ष्ण प्रकाश से पृथ्वी पर उष्णता व्याप्त हो जाती है तथा चन्द्रमा की चंचल किरणो से दूध-धुली चान्दनी नयनाभिराम शीतलता का अनुभव कराती है। घनघोर घटायें अपने निनाद की मुरली की धुन से धूम मचाकर विद्युतरूपी सर्पिणी को नचा रही हैं। [1]इन्द्रधनुष को सुन्दर सतरंगी पतंगो की तरह बादलो के ऊपर क्रीडारत चित्रित किया है। सदैव ध्रुव को केन्द्र बनाकर तारे परिक्रमा करते रहते हैं तथा सुदूर क्षितिज पर पृथ्वी से स्पर्श करते हैं। भ्रमित होकर भोले प्राणी ज्यो-ज्यों क्षितिज की ओर जाते है, त्यो-त्यो क्षितिज दूर हटता जाता है।

संस्कृत में कालिदास व भवभूति, हिन्दी साहित्य में तुलसी, सेनापति, प्रसाद, पन्त आदि कवियो ने प्रकृति का आलम्बन के रूप मे व अन्य प्रकार से वर्णन किया है। जब से कालिदास ने मेघ को दूत के रूप मे सन्देश देकर विदा किया था तब से भारतीय साहित्य मे प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत बादलों के अत्यन्त ही मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किये हैं। अंग्रेजी में शैली की कविता 'क्लाउड' अपना विशेष स्थान रखती है। हिन्दी में पन्त जी ने 'धूम धुंआरे काजर कारे हम ही विकरारे बादर' कह कर बादल की आत्मोक्ति से कविता का सूत्रपात किया है। 'बेवस' ने 'काली घटा' (कारी घटा) पर अपनी लेखनी का प्रयोग कर कुशल चितेरे की तरह सुरंगो का रसास्वादन कराया है। उनकी रचना भाषा, भाव तथा कलापक्ष की दृष्टि से अंग्रेजी के शैली और हिन्दी के पन्त जी की कविताओं से

---

1 छा रात रतन पोती—सलमे सवार मोती
जंहि ते अपार मोती—झिरमिर झमक सां ज्योती;........
तेज़ी नजर निहारी धरतीअ ते बाहि बारी
माठी निगाह सां ठारी—थो हेठि खीर हारीं
तुंहिजा व नेण न्यारा, सिज चण्ड नांव वारा ॥....
गजगोड़ जीअं गजे थी—मुरलीअ जी धुन मचे थी
नांगिण–सिवण अचे थी, लहर्यूं हणी नचे थी....

भिन्न है। सिन्ध मे वर्षा का आगमन दक्षिण-पश्चिम दिशा से होता था। काली घटाएँ पश्चिम दिशा से गर्जन-तर्जन के साथ घिर आई हैं, अपने साथ मेघ-घोष के चंग, मृदंग व अन्य वाद्य-वृन्द ले आई है, उन कजरारी घटाओ मे विद्युत प्रकाश बत्तियों सदृश देदीप्यमान है। मयूर मुदित मन से थिरक-थिरक नृत्य-रत हैं, उनके ऊपर काली घटाएं वर्षा के बून्द-रूपी मोतियो की मनुहार कर रही हैं।[1] कवि की उर्वर कल्पना शक्ति केवल कोरी शब्द रचना व उपमानो के धरातल तक ही सीमित नही है, वह काली घटा के आगमन से उन अकाल ग्रस्त क्षेत्रो को आश्वस्त करती और कहती है—हे बादल! तुम उस असीम आत्मा की कृपा के एक अणु हो जिसकी कला से एक बीज अनेक भण्डारो में बदल जाता है। कवि को समुद्र की सीप का भी स्मरण हो आता है, वह उसके प्यासे हृदय में आशा की किरण का सचार कर आगे बढ जाता है।

अपनी कविता 'पक्षी की पुकार' (पखीअ जी पुकार) मे कवि ने प्रकृति-चित्रण बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप मे कर पराधीन भारतीयो की मनोव्यथा पिंजरे मे बन्द पक्षी के माध्यम से प्रतिबिम्बित की है। पक्षी के जीवन मे खुले आकाश व प्रकृति की विशाल पृष्ठभूमि को लेकर कवि ने पिंजरे मे बन्द पक्षी की परवशता मे अविभाजित भारत के परतन्त्र भारतवासियों का चित्रांकन किया है। कविता मे नाटकीय ढंग से दृश्य-विधान शैली द्वारा वाटिका, प्रात:काल, अनन्त आकाश प्रकृति के वातावरण की निर्मल निरीह स्वच्छन्दता का अत्यन्त ही मार्मिक व सजीव वर्णन किया है। प्रकृति के विभिन्न दृश्य पाठक के समक्ष इस प्रकार उपस्थित होते हैं मानों पक्षी का समूचा जीवन निरन्तरता लिए गत्यात्मक चलचित्र की भांति दृश्यमान हो उठा हो। कविता का आरम्भ स्मरण अलकार से होता है जिसमें पक्षी के स्मृति-पटल पर वह युग साकार हो उठता है जब वह मुक्ताकाश में

---

1. गर्जन्दी गजन्दी अचे ओलह् किना कारी घटा,
साज् सुरन्दनि साण वजन्दी बादलनि वारी घटा,
चंग ऍं मृधंग जे भौजुनि सां मतवारी घटा,
माहि बिजलीअ जे बत्युनि सां चमकन्दड़ सारी घटा,
मेघ जो आवाज् धरतीअ ते नचाए मोर थो,-
खूब सारंग जिन मथां मोत्युनि जो घोरे घोर थो ॥

दिग्-दिगन्तर का वासी बन विचरण करता था।[1] कवि ने चित्रण में संश्लिष्ट योजना का पूर्ण निर्वाह किया है। पक्षी के नीरव-नीड़, वाटिकाओं, पुष्पों, अनन्त आकाश, ओस-बिन्दुओं से सद्यस्नात सुमनों व शाखाओं के झूलों आदि का सरल भावमय व हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। कवि की अन्तर्दृष्टि ने मानो पक्षी के हृदय में बैठकर उसकी पीड़ा की अनुभूति की है। ऐसे शब्दों का चयन किया है जो हृदय को छू लेते हैं। शब्दानुप्रास की छटा जैसे हमें 'बेवस' की रचनाओं में मिलती है ऐसी आधुनिक सिन्धी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। इनसे पूर्व केवल भक्तिकालीन कवि शाह अब्दुल लतीफ (1689–1752) के काव्य में अनुप्रास की ऐसी मनोहारी छटा दृष्टिगोचर होती है। छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास अत्यन्त ही स्वाभाविक रीति से प्रयुक्त हुए हैं जो प्रकृति-चित्रण का सजीव, सरस और प्रभावशाली बना देते हैं।

कई स्थानों पर कवि ने प्रकृति का प्रतीकात्मक रूप में वर्णन किया। प्रकृति के कुछ उपादानों का चयन कर उनके द्वारा अपने भावों को अभिव्यक्त किया है। 'प्रियतम तेरा दिव्य दर्शन' (ज्लाण सकाउ तुंहिंजो) में कवि ने रात्रि को अज्ञान के रूप में, प्रात को ज्ञानोदय के रूप में, बुलबुल को जीवात्मा, माली (बागबान) को परमात्मा, सागर (बहर) को ज्ञान के भण्डार के प्रतीक स्वरूप प्रयुक्त किया है। उसी प्रकार अपनी कविता 'विराट की रथ-यात्रा' (शह सवारी) में 'मशाल' को सूफी रहस्यवादी साधना में मार्फत का प्रतीक तथा कुमारी को विराट शक्ति के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया।[2]

---

1. ताज़ो तरी अचे थो दिल ते उहो ज़मानो,
जंहिंमें अद्यो अभो मूं आज़ाद आशियानो।
लामुनि ते लोद मुंहिंजी, शाखुनि ते शादमानो,
गुंचनि ते ए गुलनि ते मुंहिंजो हो खास गानो।
मौजूद ऐं मुयसर, हो सैर आसमानी,
चेहरे मां थे मुशीअ जो, निर्वार थी निशानी॥

2. कहिंजे तजिमल लाइ ही 'बेवस' जशन जल्सो लगो
गुंब जे पर्दे मंझां कहिड़ी कुमारी थी अचे ?

'नदी' कविता में प्रकृति का चित्र आलंकारिक रूप मे किया गया । नदी अपनी आत्मकथा उद्‌गम से लेकर अन्त तक प्रस्तुत करती है । ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि ने सिन्धु नदी का ही जीवन्त वर्णन किया हो । कविता में वातावरण को प्रस्तुत करने मे अत्यन्त ही प्रभावशाली शब्दावली का प्रयोग किया गया है । नदी कहती है– आकाश मे बादलो के रूप मे मेरा विचरण करना हुआ तथा शीतकाल में मैंने उत्तुंग शैल-शिखरों को हिमाच्छादित कर दिया । ग्रीष्म की तपन की प्रबलता ने मेरे अक्षुण्ण प्रवाह को वादियो की ओर नि:सृत किया । भीषण निदान के साथ मैं पर्वतमालाओं से टकराती हुई समतल भूमि की ओर अग्रसर हुई ।[1]

कवि पर गुरु नानक तथा कबीर का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है । ब्रह्माण्ड मे उन्हे आठों याम अनहद शब्द सुनाई देता है । प्रकृति-चित्रण मे भी उन्हे "सोहं" की ध्वनि गुंजायमान प्रतीत होती है । उन्होने कहा है—

अनहद नाद वजे नित आदि,
    सोहं सुण स्वासन में ।
सुरत शब्द जे मिल मिलाए,
    चाढ़ गुदीअ से गगन मे ।।

कवि का प्रकृति-चित्रण सिन्धी साहित्य की अमूल्य निधि है । आधुनिककाल मे उनके समकक्ष कोई सिन्धी कवि खड़ा नही हो सकता । उनका प्रकृति-चित्रण जितना विशद् है, उतना ही गहरा है; जितना अनुभूतिजन्य व मौलिक है उतना ही कल्पनाशील व सरस है ।

---

1. आकास मे ककर थी केंहि दम हो फिरण मुंहिंजो,
सर्दीअ सां वर्फ थी थ्यो चोट्युनि ते किरण मुंहिंजो,
गर्मीअ जे जोश सां थ्यो वाद्युनि मे सुरणु मुंहिंजो,
घाटनि जे घेरे में थ्यो गुल्बे सां घिड़णु मुंहिंजो.
    टकरी टकर टकर सां सिर खूब मे ससायो;
    मासर अची पटनिते मूं पाण खे पुजायो ।।

4

गाँधीयुग और 'बेवस'

अंग्रेजी साम्राज्यवाद मे दासता की शृंखलाओं से जकड़े हुए देशवासियो, बुद्धिजीवियो व साहित्यकारो के सम्मुख यही एकमात्र उद्देश्य था कि अपने प्राणो का उत्सर्ग कर देश को परतन्त्रता की बेड़ियो से मुक्ति दिला दें। भारत के अन्य प्रान्तवासियो की भाति सिन्धवासियों ने भी आन्दोलनात्मक गतिविधियों मे पूर्ण-रूपेण भाग लिया। प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी डॉ० चोइथराम गिदवाणी, काका साहेब कालेलकर, चिन्तामणि शास्त्री, प्रोफेसर घनश्याम विष्णु शर्मा, पण्डित देवदत्त कुन्दाराम शर्मा, पं० भैरवदत्त भारस्वत आदि ने सन् 1910 मे ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना की व राष्ट्रीय चेतना के प्रसार मे सक्रिय योगदान दिया। इस संस्था का मुख्यालय हैदराबाद सिन्ध मे था तथा पण्डित शंकरदत्त आशाराम शर्मा ने दान रूप मे इसके लिए भवन अर्पित किया। यहाँ शिक्षा के माध्यम से स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिये विद्यार्थियो को तैयार किया जाता था। सोलह वर्ष की आयु मे किशनचन्द 'बेवस' हैदराबाद स्थित टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल मे प्रशिक्षण हेतु आये। वे वहा पूरे सिन्ध के युवकों के सम्पर्क मे आये जिनमें देश को अंग्रेजो की दासता से मुक्त कराने की तड़प तथा देशसेवा एव जनसेवा का उत्साह था। सरकारी कर्मचारी होने के नाते 'बेवस' किसी भी प्रत्यक्ष आन्दोलनात्मक गतिविधि मे भाग नही ले सकते थे फिर भी एक कोने मे चुपचाप भी नहीं बैठ सके। उन्होने अपने विद्यार्थियों

मे देश-भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी तथा महात्मा गांधी के ग्रहिंसात्मक ग्रान्दोलन में भाग लेने की प्रेरणा दी।

फरवरी सन् 1909 में महात्मा गांधी ने सिन्ध प्रदेश की यात्रा प्रारम्भ की। उनके दर्शन के लिये हजारों की सख्या मे प्रत्येक वर्ग के लोग उमड़ पड़े। प्रत्येक नगर मे उन्हें धनराशि की थैलियाँ भेंट की गयी। 'बेवस' के मानस पर गांधीजी के सादे जीवन ग्रौर साधु स्वभाव की ग्रमिट छाप ग्रंकित हो गयी। युवा वर्ग उनकी विद्वत्ता, त्याग, देशभक्ति से इतना प्रभवित हुग्रा कि लोगों ने ग्रग्रेजी शिक्षा का बहिष्कार कर कई नये विद्यालयों की स्थापना की, जिनमे राष्ट्रीयता चरित्र-निर्माण, देश-भक्ति, जनसेवा तथा स्वतन्त्रता संग्राम मे भाग लेने की प्रेरणा दी जाती थी। ब्रह्मचर्य ग्राश्रम की सन् 1910 मे हैदराबाद सिन्ध मे स्थापना होने के पश्चात् वहाँ पर साधु नवलराम हीरानन्द ग्रकादमी, नौशहरा नगर मे राष्ट्रीय कन्या पाठशाला, भिरिया कस्बे मे कौडोमल चन्दनमल ग्रकादमी (हाई स्कूल) ग्रादि कई संस्थाग्रों की स्थापना हुई। 'बेवस' ने ग्रपनी ग्रमर रचनाग्रो से सिन्धी भाषा-भाषियों मे स्वतन्त्रता के सन्देशो का प्रचार किया। ग्रपनी रचना 'ग्राज़ादगी' (ग्राज़ादी) में उन्होने स्वतन्त्रता के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा "हे ग्राजादी ! तुम्हारे बिना व्यक्तित्व की गुप्त शक्ति का ग्रनावरण नही होता, मानव जीवन प्रस्फुटित होकर निःसृत नही होता, ग्रन्धकार से उभर कर ग्रन्तःकरण का प्रकाश प्रज्ज्वलित नहीं होता, तुम्हारे सिवाय राष्ट्रीयता निकम्मी हो जाती है तथा उसका परिष्कार नही हो पाता। तुम्हारे बिना स्वावलम्बन का बीज नष्ट हो जाता है ग्रौर ग्रात्मोन्नति का गुण विशेष भी नष्ट हो जाता है।" कवि सदैव ग्राशावान रहता कि देश ग्रवश्य स्वतन्त्र होगा तथा उन्होंने ग्रन्य रचनाग्रो के साथ देशप्रेम की रचनाग्रो का भी सृजन किया।

शख्सियत जो गुप्त शक्ति तो बिना निकिरे न थी,
फाटु खाई जिन्दगी इन्सान जो निसिरे न थी,
रोशनाई रूहजी ऊंदाह मभा उभिरे न थी,
कौमियत नाकारिगड़ थी काँहि तरह सुधरे न थी,
पाण से भाड़णु एँ सुद्दारीग्र जो थो बुणु नाशु थ्ये,
ग्रात्मिक उन्नतीग्र सन्दो हिकु खासि गुणु थो नाशु थ्ये

अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन (दिसम्बर 1919) से लौटते समय लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने पंजाब तथा सिन्ध की सन् 1920 के प्रारंभ में यात्रा की तथा उनके विचारों से प्रभावित होकर कई व्यापारी, बुद्धिजीवी व युवक स्वतन्त्रता सग्राम के आन्दोलन मे सम्मिलित हुए। लोकमान्य तिलक ने नारा लगाया "स्वतन्त्रता हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है"। 'बेवस' जी ने अपनी काव्य-रचनाओ (आजादगी) मे इसी भाव को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि स्वतन्त्रता मानव जाति का जन्म-सिद्ध अधिकार है[1] और इसे कोई भी नही रोक सकता। अपने देशवासियों को आश्वस्त करते हुए कविता ने अन्तिम चरणो मे कहा कि दिव्य लोकवाले अपनी गुप्त सहायता लेकर भू लोक पर पहुँचेंगे और पराधीनो के आर्तनाद के आह्वान पर प्रभु स्वयं न्याय करेंगे।[2]

सन् 1929 मे महात्मा गांधी ने सिन्ध का दौरा किया। 12 फरवरी, 1929 को भिरिया कस्बे मे भाषण देते हुए गांधीजी ने कहा "जब तक आज़ादी नही मिलती, तब तक मैं बेचैन रहूँगा।" यह महात्मा गाधी का सिन्ध प्रान्त का दूसरा दौरा था। नई पीढ़ी इससे इतनी प्रभावित हुई कि स्वतन्त्रता सग्राम की आन्दोलनात्मक गतिविधियाँ एक साथ बढ गईं। पक्षी और पिंजरा नामक कविता का प्रकाशन हुआ। कविता मे पक्षी और उसको कैद करनेवाले पिंजरे के बीच अत्यन्त ही सुन्दर वार्तालाप है। पिंजरा पक्षी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि—हे पक्षी, तुम मेरी पीठ-पीछे बुराई करते रहते हो कि पिंजरा बहुत पापी है, उसने मुझे कैद कर रखा है, मैंने तो दयावश तुझे अपने सीखचों के पीछे आश्रय दिया है। बिल्ली से मैंने तुझे सुरक्षित बचाकर रखा है। जो पक्षी आकाश मे उच्छृंखल आवारागर्दी करते हैं वे ही बाज़ के पंजो का शिकार बनते हैं तथा वे लोगो की गुलेल का निशाना बनते हैं। तुम तो मेरे यहाँ सुरक्षित बैठे हुए हो, रुचिकर व्यंजन तथा मधुर फलों का रसास्वादन कर रहे हो। पक्षी ने एक-एक करके पिंजरे के एक-

---

1 गोद माता मे मिलियल दातार जो जा दात आहि।
ऍं जन्म ते जहिं जे लाइ हक़दार इन्सान जाति आहि॥

2 अर्श वारा फर्श ते ईन्दा मदद मुख़िफ़ी खणी।
दर्द वारीअ दांहते खुद दादु आणीन्दो धणी॥

एक तर्क को काट दिया ग्रौर उसे निरुत्तर करते हुए कहा कि ऐसी गुलेलों की गोलियों को मैं पुष्प-वर्षा समझूंगा, ऐसे मधुर फलों को धिक्कार है। मुक्त ग्राकाश में ग्रगर शाही बाज मेरे उपर ग्राक्रमण करेंगे तो मेरे पखों की शक्ति का परीक्षण होगा तथा पराधीनता के प्रपंच से परे होकर खुले नील गगन में मैं मुक्ति प्राप्त करूंगा ग्रौर ग्रगर इस प्रक्रिया में मृत्यु प्राप्त हुई तो ऐसी मृत्यु को मैं उलाहना नहीं दूंगा, क्योंकि 'बेवस' कहते हैं कि कारागार मे जीवन काटना जिन्दा ही जंजाल ग्रौर मृत्यु को भोगना है। इस कविता मे कवि ने ग्रग्रेजी शासन को ही पिंजरे के रूप मे प्रस्तुत किया है ग्रौर पक्षी द्वारा परतंत्र ग्रौर स्वतन्त्रताकामी भारतवासियो की भावना को उजागर किया है।

इससे पूर्व सन् 1916 में जब प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका ग्रपने चरमोत्कर्ष पर थी तब लेखक ने मुल्की प्यार (देश-प्रेम) नामक रचना कर ग्रपने देश-प्रेम का परिचय दिया था। यह कविता सिन्ध प्रांतीय युद्ध प्रचार समिति द्वारा पुरस्कृत हो चुकी थी। कविता का एक-एक शब्द मृतकों में जान फूकने की क्षमता रखता है। स्कूलो तथा कॉलेज के विद्यार्थी इसे बड़े प्रेम से गाया करते थे। कविता के तृतीय, चतुर्थ, पंचम एवं छठे चरणों में कवि ने ठेठ सिन्धी शब्दों का प्रयोग किया है तथा ग्रत्यन्त ही मार्मिक शब्दों मे कहा है कि वे माताएं क्यों नही मुस्करायें जो ग्रपने नवजात शिशुग्रो को यह लोरी सुनाती हैं कि ग्रपने देश के ऊपर तन-मन न्यौछावर करने से बढकर ग्रौर कोई सेवा नही है। ऐसे पुनीत कार्य के लिए मातायें ग्रपने जिगर के टुकड़ों ग्रर्थात् प्यारी संतान को सहर्ष देश-सेवा मे ग्रर्पित करेंगी ग्रौर ग्रपना जीवन कृत-कृत्य मानकर ये ही मिन्नते मागेंगी कि हमारे देश की गरिमा ग्रक्षुण्ण रहे।[1]

कवि ने ग्रंग्रेजो की दमन-नीति व स्वतन्त्रता सेनानियो पर ढाहे गये ग्रत्याचारों की नीति की प्रकट रूप से भर्त्सना नही की क्योंकि वे सरकारी कर्मचारी थे तथा वेतन भोगी ग्रध्यापक थे, फिर भी उन्होंने बडी निर्भीकता से साबरमती का जो सन्त (साबरमती का सन्त), गुलामी, ग्राजादी, कौमियत, वीरू विलायत व्यो

1 ग्रकुल, ग्राज़दगी, इक़बाल ऐं ग्रासूदगी इज़्ज़त।
उतेई पेरु पाईंदा सची जित मुल्क लाइ मुहब्बत॥

(वीर विलायत गया), गाधी, जाति झगिडो (जातीय झगड़ा), किथे इतिहाद (कहाँ एकता), राम-रहमान, ग्राम सुधार, स्वदेशी ग्रादि ग्रनेक कविताग्रों का सृजन किया ।

महात्मा गाधी द्वारा द्वितीय गोलमेज कान्फ्रेंस (सन् 1931) मे भाग लेने के लिए विलायत जाने पर 'बीरु विलायत व्यो' (वीर विलायत गया) कविता की रचना की । लाल लगोटी पहने हुए गांधीजी हंसते हुए विलायत के लिए रवाना हुए, पश्चिम के जन-समुदाय के दिल मे प्राच्य देश के इस सम्मोहक ने सदैव के लिए पूजा योग्य स्थान प्राप्त कर लिया । पश्चिम मे जाकर उसने पूर्व की मुरली की धुन बजायी तथा नया उत्साह ग्रौर उमंग भर दी । लन्दन के जिस गली-कूचे से वह लगोटी का लाल निकलता, वहां ग्रपार जन-समुदाय उसके सम्मान के लिए शातचित्त खड़ा हो जाता । भारत की मांगो को उसने ग्रग्रेज शासकों के सम्मुख रखा ।

महात्मा गाधी विलायत से निराश होकर वापस ग्राये । कवि ने ग्रपने मन मे स्वतन्त्रता की कई ग्राशायें संजोये रखी थी किन्तु गांधीजी के खाली हाथ लौटने का समाचार सुन उनका कवि-हृदय निराश के घने बादलो से घिर गया ग्रौर उन्होने 'उजड़ ग्रास' (उजडी हुई ग्राशा) की रचना की । "हाय विधाता ! गगा के किनारे पर जाकर भी मुझे प्यासा वापस लौटना पड़ा, कल्पवृक्ष के नीचे पहुँच कर भी भूखा लौटना पडा । हे जराह ! (ग्रग्रेज रूपी शल्य चिकित्सक) मैंने समझा था कि मेरे दिल के घाव का तुम उपचार करोगे पर तूने ग्रपनी शल्य चिकित्सा की छुरी के साथ-साथ ग्रपनी गुप्त कटार से मेरे घाव को गहरा कर नासूर में बदल दिया । एक ग्राहत, बचाव के लिए पुकारता हुग्रा (हे ग्रग्रेज) तेरे द्वार पर ग्राया, पर तूने ग्रन्यायपूर्ण उसके घावो मे चिनगारी सुलगाकर (उपचार की ग्राशाग्रो को) धूमिल कर वापिस भेज दिया ।[1] महात्मा गाधी 29 दिसम्बर, 1929 को भारत

1. वाह किस्मत ! प्यो गंगाजल तां उञायल वरिणो,
कल्प जे वृछ ते पहुची प्यो बुखायल वरिणो,
जख्म-दिल सूरत नासूर कया तो जे जराह,
नाउं नश्तर, खफे खजर सा प्यो घायल वरिणो ।।
दर्दमन्द दादु पुरियो, दाह खणी दर ते ग्रची,
दर्द बेदाद सा प्यो दूर दुखायल वरिणो ।।

वापस श्राये थे उसी समय उक्त कविता की रचना हुई। कवि के प्रमुख शिष्य पद्म श्री हून्दराज 'दुखायल' ने लिखा है कि 'वेवस' साईं ने 'उजड़ भ्रास' कविता स्वयं हमे पढ़कर सुनाई थी।[1]

श्रग्रेजों ने न सिर्फ गांधीजी की माग को ठुकरा दिया वरन् साथ ही फूट डालनेवाली नीति को बढ़ावा देने के लिए मुसलमान, हरिजन व सिखो को श्रलग-श्रलग मताधिकार देने की प्रक्रिया भी श्रपनाई। कवि ने "जाति झगडों" (जातीय झगड़ा) कविता की संरचना की, जिसमें उन्होने साम्प्रदायिकता फैलाने व विभिन्न सम्प्रदायो मे वैमनस्य फैलाने की नीति की श्रालोचना की है। इससे पूर्व उनका श्रग्रेजो की न्याय-पद्धति मे प्रगाढ विश्वास था जो सन् 1931 की दमनकारी नीतियों के बाद धराशायी हो गया। कवि की क्षत-विक्षत श्रात्मा ने भारत के भाग्य की घोर विडम्बना पर हंस कर श्रग्रेज शासकों को कहा "मै श्रपनी निष्प्राण दीपशिखा को लेकर उसे पुन: प्रज्ज्वलित करने के लिए तुम्हारे पास श्राया था किन्तु तुम्हारे बल्ब ने मुझे हतोत्साहित कर दिया श्रौर मुझे श्रपनी दीपशिखा को लेकर निष्प्राण ही वापस श्राना पड़ा।"[2]

जिस कवि ने कुसुमाकर रजनी के सौरभ, प्रकृति पटी के रूप-यौवन-वैभव के गीत गाये थे, स्वतन्त्रता-सग्राम की रणभेरी को निनादित किया था; श्राज उसकी कल्पना के पख गिर गये, श्रंग्रेज शासको की श्रन्याय श्रौर दमन की नीति से उद्वेलित होकर भक्तिकालीन कवियो के समान परमात्मा की शरण मे जाकर राष्ट्रीय एकता के देवता के मन्दिर की खोज मे उन्होने श्रपनी यात्रा प्रारम्भ की। 'किथे इत्तहाद ?' (एकता कहां ?) कविता मे उन्होंने श्रभिव्यक्त किया–"हे एकता के देवता ! मैं तुम्हें कहां खोजूं, जिस श्रन्त:करण मे एकता का उजाला है, हे लाड्ले ! (परमात्मा) तुम्हारे सिवाय मेरी श्राशाश्रों का पोत द्वार-द्वार पर धक्के खा रहा है, श्रब तुम्ही

---

1. सदु पड़ादो सामियो (1984), पृष्ठ 385।

2 मूं ब॒रियल तु॒हिंजो दि॒मी श्रान्दी उझाणियल पंहिंजो।
वल्ब बिजलीश्र खां प्यो शमा विसायल वरिणो॥

बताग्रो कि स्वतन्त्रता की ग्राशा को लेकर चलनेवाले मेरे जहाज को किनारे पर लगने के लिए बन्दरगाह कहाँ मिलेगा ?[1]

17 अगस्त, सन् 1932 को ब्रिटिश सरकार ने साम्प्रदायिक पंच निर्णय (कम्यूनल अवार्ड) की घोषणा की, जिसके अनुसार हरिजनों को अन्य हिन्दुग्रों से अलग मानकर उनके लिए मताधिकार व चुनाव की अलग प्रक्रिया निर्धारित करने की विज्ञप्ति प्रकाशित की। हरिजन हिन्दु धर्म के विभिन्न अंग हैं, इस बात को लेकर महात्मा गांधी ने 20 सितम्बर, सन् 1932 को आमरण अनशन आरम्भ किया। उन्होंने कम्यूनल अवार्ड को रद्द करने के लिए ब्रिटिश सरकार को पत्र लिखा। कवि ने अपनी कविता 'साबरमती अ जो सन्त' (साबरमती का सन्त) में इंगित किया कि हे बापू! तुम करोड़ों मूक भारतवासियों की वाणी हो, तुम्हारी इस शान्ति के पीछे प्रबल प्रभंजन की पृष्ठभूमि है, सुस्मित के पीछे एक पीड़ा की दुखान्तिका है, तुम्हारे ललाट पर सत्य के चिन्ह अंकित हैं, तुमने शारीरिक शान्ति के प्रयोग को छोड़कर आध्यात्मिक शक्ति के रहस्य को प्रकट किया है और तुम्हारे अहिंसा रूपी हथियार ने सबको किंकर्तव्य-विमूढ़ कर दिया है, तुम अपनी अंगुली से संभल कर इशारा करना क्योंकि तुम्हारे संकेत के पीछे नियति का अज्ञात वरदहस्त है। यदि तुम्हारे संकेत का आदेश किसी के विरोध में चला गया तो हिन्द महासागर व हिमालय विपुल कोलाहल के साथ टकरा उठेंगे, तुम्हारी अंगुली के इशारे को छियासठ करोड़ आँखें टकटकी लगाकर देख रही हैं तथा एक इशारे से ही छियासठ करोड़ भुजायें फड़क उठेंगी।

---

1. एकता जा देवता ! तुंहिंजो लहो मन्दर किथे ?
   ग्रहिं मे इत्तहादी उजालो ग्राहि सो ग्रन्दर किथे ?
   दरबदर थ्यो दादला तो बिन उम्मेदुनि जो जहाज़ ?
   ग्रास ग्राज़ादीग्र लाइ ग्राहे बंठकी बन्दर किथे ?

2. तू किरोड़ियन हिन्दुवास्युनि बेज़बाननि जी ज़बान,
   तुंहिंजी ख़ामोशी बताये तेज तूफ़ानी बयान,
   मुर्क मे तुंहिंजी समायल सरस दर्दी दास्तान,
   तु हिंजे पेशानीग्र मंभ्रां साबित सचाईग्र जो निशान,....
   ....

सन् 1931 मे सरदार वल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता में कराची कांग्रेस अधिवेशन का आयोजन हुआ। इस अधिवेशन मे खान अब्दुल गफ़ार खान (सीमांत गांधी) की लाल कुर्ता पलटन आकर्षण का प्रमुख केन्द्र थी। सिन्ध के प्रसिद्ध राष्ट्रवादियों ने अधिवेशन में भाग लिया। पठानो को महात्मा गांधी के अधीन काम करते देखकर लोग विस्मित हो गये। हिन्दु-मुस्लिम एकता को कायम रखने के लिए कवि के नगर लाडकाणा में दीवान सीरूमल ईसरानी, श्री मोहनलाल वासवाणी आदि ने हिन्दु-मुस्लिम एकता के लिए सक्रिय कार्य किया। कवि ने 'राम-रहमान', 'साज़-हिन्दी', 'कौमियत' आदि कविताओं की रचना की। 'राम-रहमान' मे उन्होंने गांधीजी की राम-धुन कविता, रघुपति राघव राजा राम, ईश्वर अल्लाह एक ही नाम की मूल भावना को अनुमोदित करते हुए कहा कि राम या रहीम दोनों शब्दो से तात्पर्य उस अल्लाह या परमात्मा से है, दीन कहे या धर्म कहें, अभिप्राय उस मार्ग से है जिसके द्वारा उस परमात्मा को प्राप्त करना है, इश्क कहें या प्रेम उद्देश्य उसी परमात्मा की चाह से है, साधु बनें या सामाजिक ध्येय अन्त करण की चेतना की शुद्धि से है। शब्दो के दलदल मे फंसकर मन के लिए मुसीबत मोल न लें। मंदिर-मस्जिद, काबा-काशी सभी उसी के स्थान हैं फिर क्यो पारस्परिक वैमनस्य बढाया जाए। कवि प्रश्न पूछते हैं—क्या हिन्दु और मुसलमानो का भगवान अलग-अलग है ? अपने भाईयो के साथ लड़ना यह कुरान की तालीम नहीं, न ही यह वेदों की शिक्षा है। अन्त में अत्यन्त ही वैज्ञानिक ढग से समझाते हुए वे कहते हैं कि दो आखों से देखने के बावजूद भी वस्तु का एक ही तथा सही

ज़ोर जिस्मानी छुटे तो राज रूहानी सल्यो,
एँ अहिंसा जो नओं हथियार हैरानी सल्यो ॥....
....
पंहिजी आङुर जो इशारो कर मभाले गोर सां,
आहि हीउ तुंहिजो इशारो खास गैबी जोर सा,
जे हली ब्यो हुक्म हेकर कंहि मुखालिफ़ तोर सा,
हिन्द सागर ऐं हिमालय टकरन्दा शह शोर सा
हिन इशारे दे दिसन ब्यूं अजु अस्यूं छाहठ करोड़,
हिन इशारे ते सजन बाहूं सजूं छाहठ करोड़ ॥

चित्रण ही हम देख पाते हैं। उसी प्रकार दो मज़हबों के होते हुए भी हम ईश्वर को एक सरीखा ही देख सकते हैं।[1]

कवि का सूक्ष्म-चेता संस्कारी मन मानो महात्माजी की प्रत्येक गतिविधि और कार्यक्रम से जुड़कर जनता के सम्मुख गांधीजी के सिद्धान्तों की व्याख्या करने के लिए चौराहे पर खड़ा होकर दिशा-भ्रांत लोगों को आवाज़ दे रहा था कि युगों से पीड़ित हे भारतवासियो! तुम निराश मत हो, अब शताब्दियों के बाद तुम्हें दासता से मुक्ति दिलाने के लिए, अंधकार से प्रकाश में लाने के लिए, भौतिकवादी जीवन-दर्शन से आत्मोन्नति के सन्मार्ग पर ले जानेवाला युग-पुरुष आया है। उनकी कविता 'सची राहत' (सच्ची राहत) से महात्मा गांधी के प्रिय भजन *"वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाने रे" का मूल आदर्श* प्रतिबिम्बित होता है। वही मानव वास्तविक संतोष प्राप्त करता है जो सदैव दूसरों के लिए सहानुभूति रखता है, जिसका सरल स्वभाव है, जो परायों से भी प्रेमभाव रखता है, सर्वजन-हित से पीड़ित है, दूसरों के अश्रु-कणों से द्रवित होता है, दूसरे के अहित को अपना अहित मानता है, दूसरों को सहायता देने का अवसर नहीं चूकता, अपनी संवेदनशीलता व साहस को नहीं खोता, जो निर्दोष अन्तःकरणवाला है, बाहर और भीतर समभावी है, सर्वत्र कल्याण की कामना करता है, जिसमें हठ व चतुराई नहीं है, सादा जीवनयापन करता है, इन्द्रिय-जीत है अभावग्रस्त नहीं है तथा अभाव में भी आत्म-सम्मान नहीं खोता, सत्य को तिलांजलि देकर जो परम्पराओं के पाश में नहीं फंसता, भ्रमित न होकर स्वतन्त्र प्रकृति का है, जिसके ध्येय और आशय उत्तम हैं, स्पृहाधीन नहीं है, वही परमात्मा के वैभव को प्राप्त करता है।[2]

---

1. भाउनि पहिंजन साण लड़ण तइलीम डहा कुरान जी नाहि,
सोच कर्यो मंशा बि इहा का वेदन जे फर्मान जी नाहि,
बिन नेणनि हून्दे भी 'बेवस' चीज़ त हिकिड़ी दिसजे थी,
हर मज़हब जे अन्दर दरस तमीज़ त हिकिड़ी दिसजे थी॥

2. सची राहत (सच्ची राहत)—'सद्‌ु पड़ादो सागियो', पृष्ठ—4॥

भारतीय संस्कृति मे आत्मोत्थान के लिये अहिंसा का प्रमुख स्थान रहा है। पातंजलि के अष्टयोग मे भी अहिंसा के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। महात्मा बुद्ध से लेकर महात्मा गांधी तक अहिंसा का सिद्धान्त भारतीय जन-मानस पर छाया रहा है। जिस प्रकार एक सिपाही का हथियार उसकी बन्दूक है, एक लेखक का हथियार उसकी कलम है, एक भक्त गायक का हथियार प्रभु का गुण-कथन है, उसी प्रकार गांधीजी का हथियार अहिंसा का सिद्धान्त था, जिसके बल पर उन्होने स्वाधीनता के संघर्ष की व्यूह-रचना कर भारतीय जन-मन को उस हथियार को चलाने का प्रशिक्षण दिया। वह एक ऐसा हथियार था जिसे चलाने में कई निपुण शस्त्रधारी भी त्रुटि कर सकते थे। इसके उपयोग के लिये अशरीरी बल, आत्मिक उन्नति तथा हथियार की अमोघता मे दृढ़ विश्वास रखनेवालो की आवश्यकता थी। साबरमती अ जो सन्त (साबरमती का सन्त), गांधी जन्म आदि कविताओं मे इन्हीं भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया है। 'साबरमती अ जो सन्त' कविता में उन्होंने कहा है कि हे गांधी! तुमने जब पराधीनता की उलझी हुई तस्वीर (वस्तु स्थिति) का जायजा लिया तो तुमने अंग्रेजो के सामने तलवार तथा तर्क-पद्धति को अनपयुक्त समझा और अहिंसा द्वारा भारत के भाग्य को युक्ति से पलटने का प्रयास किया। तुमने अन्याय की शृंखला को चतुरता से तोड़ना चाहा। शारीरिक शक्ति के प्रयोग का त्याग कर तुमने आत्मिक शक्ति के मार्ग को प्रशस्त किया और अहिंसारूपी आश्चर्यजनक अस्त्र का प्रयोग करना सिखलाया।

महात्मा गांधी तथा अंग्रेजो के बीच जब भी वार्ताएं भंग होती तो अंग्रेजों के अत्याचारों का दमन-चक्र तीव्र हो जाता। कवि की लेखनी से उसकी मनोदशा के उतार-चढ़ाव के चिह्न परिलक्षित होने लगते थे। कवि की प्रतिक्रिया अपने तीव्र रूप में उनकी रचनाओं मे प्रतिबिम्बित होने लगती थी। वार्ता भंग होने से कवि की आशाओ पर तुषारापात हो जाता, वे मानो निष्प्राण हो जाते और उनका काव्य-सृजन का क्रम ठप्प हो जाता। उनकी कविता 'शाति ऐं असर' (शांति और प्रभाव) मे उन्होंने ऐसे एक अवसर पर टूटे हुए हृदय से लिखा है –"अब कवियो के लिये काव्य-सृजन की खुराक खत्म हो गयी खुश होकर खाने का वक्त चला गया, आंखो के सामने की देदीप्यमान ज्योति अब न रही, कवि की कल्पना की उड़ान के विश्राम के लिये अब कोई ठौर नही रही। हाय! आज भारत के ऊपर काली धुंध आच्छादित है। भारत की स्वाधीनता का कवि-स्वप्न मानो अधूरी आशा के समान

बिखर गया, उसे चारों ओर दमन-चक्र का अंधकार ही दृष्टि-गोचर होने लगा । प्रकाश मे पथ-प्रदर्शन करने की क्षमता का ह्रास होता हुआ प्रतीत हुआ, काव्य-सृजन उसे दुरुह-सा प्रतीत होने लगा । 'शाति ऐं असर' रचना कवि के अन्तःकरण के क्रन्दन की पुकार है, उसके कोमल, भावुक, हृदय का रुदन है । आत्मा देश को स्वतन्त्र देखने के लिये व्यग्र थी । वह व्यग्रता इतनी तीव्र थी कि हमारा कवि वार्ता भग होने के पश्चात् बिलख-बिलख कर रो पड़ा कि अब क्या होगा ? क्या मुझे दासता के अधकार मे ही अपनी जीवन-लीला की समाप्ति देखनी होगी ? कवि कह रहा है कि अब मुझ मे कुछ लिखा नही जाता । चारो ओर निराशा का ही प्रसार है, कही किनारा नजर नही आता । मेरे लिये ध्यान लगाने के लिये आसन लगाकर बैठना भी मुश्किल हो गया है ।

1917 की रूसी क्रान्ति ने विश्व-चिन्तन-धारा मे साम्यवाद के नये दौर का सूत्रपात किया । इस क्रान्ति के साथ ही सर्वहारा वर्ग की पीड़ा, निराशा और दारिद्र्य और विद्रोह का विश्व-साहित्य मे अरुन प्रारम्भ हुआ । वस्तुतः देखा जाए तो साम्यवाद ने केवल एक ही वर्ग के उत्थान की कामना की है और वह कामना मूलरूप मे आर्थिक व पार्थिव उत्कर्ष तक ही सीमित है । आदिकाल से भारत के मनीषियो ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का मन्त्र सारे ससार को दिया था । हमारे ऋषि-मुनियो ने पूरे विश्व को परिवार मानकर उसके सर्वांगीण विकास की कामना की थी । सर्वोदय का सिद्धान्त भारतीय सस्कृति का मूलमन्त्र रहा है । महात्मा गाधी ने समस्त वर्गों के उत्थान की कामना की। महात्मा गाधी का सर्वोदय का सिद्धान्त धर्म, जाति, प्रदेश, आर्थिक स्थिति, आदि के सभी वर्गीकरणो से ऊपर है । वह वर्गीकरण मानव के आध्यात्मिक उत्थान, आर्थिक उन्नति, चरित्र एव अन्य मूल्यो मे सतुलन स्थापित करता है । सर्वोदय का सिद्धान्त जीव-दया तथा समस्त प्राणिमात्र के हित की कामना करता है । महात्मा बुद्ध ने भी अपने भिक्षुओ को "बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय" विचरो कहकर ससार के कोने-कोने में सर्वोदय के सन्देश के प्रसार हेतु अपने भिक्षुओ को सर्व साधारण की सेवा के लिये भेजा था । कवि 'बेवस' की रचनाओ पर बुद्ध और गाधी के सर्वोदय के सिद्धान्त का प्रभाव प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर होता है । अपनी रचना 'वदो दिल' (विशाल हृदय) मे उन्होने कहा है कि संसार मे रहकर उदार हृदय बनो ! तुम भी रहो और मैं भी रहूँ तथा अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाओ ताकि हम दोनो यहां

रह सकें। अपने हृदय के एक कोने मे मुझे भी स्थान दो। "तेरी" और "मेरी" की भावनाओं से तुम ऊपर उठो। केवल कपने देश के हित को न सोचो अपितु अपने को पूरे विश्व का निवासी मानकर नया दृष्टिकोण अपनाओ। मजहब के तग दायरों में सीमित न रहो, राष्ट्रीयता, भ्रातृत्व, मानवता के गुणो को हृदयगम कर द्वैत की भावनाओ का परित्याग करो। कवि अपने सीमित दायरे मे प्रगतिशील भी है। वे धनवान को कहते हैं कि अपने शाही महल की एक कोठरी को अगर तुम मेरे जैसे निराश्रित को दे दोगे तो तुम्हे उस मे सौ झोपडियो जितनी ठहरने की जगह गरीबों को मिल जायेगी। अन्तिम चरण मे साम्राज्यवादी शक्तियो को चेतावनी देते हुए कहते हैं कि तुम्हे देशो को हड़प करने की तृष्णा है जबकि गरीब को अपने पेट की चिन्ता है। संसार अपनी सभ्यता के चरमोत्कर्ष पर पहुँच चुका है और साम्राज्यवादी शक्तियाँ रक्तपात के लिये लालायित हैं। यह कैसी विडम्बना है कि दिन के प्रखर प्रकाश मे अन्धकार फैल रहा है।

अंग्रेज सरकार अपनी 'फूट डालो और शासन करो, (डिवाइड एण्ड रूल) नीति द्वारा हिन्दू-मुसलमानों को लडाकर साम्प्रदायिकता के विष-वृक्ष का बीजारोपण कर रही थी। कवि की आत्मा आपसी अविश्वास, धार्मिक कट्टरता व असहिष्णुता का वातावरण देखकर आर्तनाद कर उठी। यह क्या हो रहा है? लोगो को क्यो लड़ाया जा रहा है? यह कैसी मत्रणा है? गोलमेज़ कॉन्फ्रेंस मे पृथक-पृथक धर्म एव जाति के जिन नेताओ को प्रतिनिधि के रूप मे आमन्त्रित किया गया था उनकी पात्रता को देखकर 'बेवस' को पूर्वानुमान हो गया था कि अंग्रेजो का उद्देश्य साम्प्रदायिकता को फैलाना ही है। इन उद्‌गारो को उन्होने अपनी कविता "जाति झगडो" (जातीय झगड़ा) मे अभिव्यक्त किया।

कवि के जीवन का यह एक विचित्र सयोग रहा है कि उनका जन्म सन् 1885 में हुआ जबकि उसी वर्ष सर आक्टिव ह्यूम द्वारा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई थी। सन् 1947 मे जब पन्द्रह अगस्त को देश आज़ाद हुआ तो कवि की तेईस सितम्बर, 1947 को मृत्यु हो गयी। उनका पूरा जीवन-काल कांग्रेस के स्वतन्त्रता-संग्राम के कार्यकाल के समान्तर रहा। महात्मा गांधी के अलावा टॉलस्टाय तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के चिन्तन का उनके जीवन पर प्रगाढ प्रभाव था। महात्मा गांधी ने कहा 'जीवन मे वास्तविक पूर्णता प्राप्त करना ही

कला है।' यदि कला जीवन को सुमार्ग पर न लाये तो वह कला क्या हुई? टॉलस्टाय के अनुसार 'कला समभाव के प्रचार द्वारा विश्व को एक करने का साधन है।' महात्मा गाधी लेनिन के समान कुछ सीमा तक कला में उपयोगिता के समर्थक थे। 'बेवस' ने साहित्य के विषय मे कहा कि 'मनुष्य मात्र मे हार्दिक व मानसिक परिपक्वता के सृजन मे सहयोग देना साहित्य का उद्देश्य है।' उनके अनुसार गद्य, बौद्धिक परिपक्वता को तथा पद्य अनुभूतिजन्य परिपक्वता को सहयोग देता है। कवि ने 'कला कला के लिये' सिद्धान्त को स्वीकार नही किया। गांधीजी के अनुसार उन्होंने सीमित रूप में कला की उपादेयता सम्बन्धी भूमिका को स्वीकार किया है। हमारे कवि अध्यापक थे, उनकी कृतियों में बराबर उनके अन्त.करण का अध्यापक शिक्षक के रूप में उभर आता है। भाव-प्रवण काल-चित्रों के साथ कवि ने सोद्देश्य सूक्तों और वाक्यो को प्रस्तुत किया है। देश की स्वाधीनता ही कवि का स्वप्न था जो पन्द्रह अगस्त, सन् 1947 को साकार हुआ और कवि ने सितम्बर सन् 1947 मे इस पार्थिव शरीर का परित्याग किया। लगता है जैसे भारत की आजादी में न केवल भारतीय समाज को अपना लक्ष्य प्राप्त हुआ बल्कि 'बेवस' की कविता को भी अपनी मंज़िल प्राप्त हो गई, स्वाधीनता मे साँस लेकर वह भी मुक्त हो गई।

5

जीवन-दर्शन व आध्यात्मिकता

कवि की कृतियों में प्रधान स्वर आध्यात्मिकता का है। मुस्लिम बहुल प्रान्त सिन्ध में कवि ने एक ऐसी आध्यात्मिकता का प्रतिपादन किया जो मूल रूप में न तो धार्मिक है न साम्प्रदायिक, जो मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़ती है। जो समस्त प्राणिमात्र को सुसंस्कारों से अभिषिक्त कर उसे एक ऐसे धरातल पर स्थापित करती है जहां धर्म, जाति तथा मत-मतान्तरगत भेद-भावों से ऊपर उठकर मानव मन की धार्मिक अनुभूतियों का विकास होता है।

'बेवस गीताञ्जली' भजन, गीत एवं मुक्तक रचनाओं का संकलन है। इन गीतों में कवि की कोमल भावनाओं, संसार की निस्सारता, आत्मा की अमरता, मानव देह की नश्वरता को चित्रित किया गया है। जीवन स्वप्निल है, मानव-मन गृह-सम्पत्ति में आसक्त है, जीवन चार दिनों की चांदनी है तथा निमित्त मात्र है। पतझड़ के आते ही सब कुछ झड़ जाता है, इसलिए हे पथिक ! तुम जागो क्योंकि सारा संसार पानी का बुलबुला है, श्रावण की वर्षा अनित्य है, चमन में बुलबुल की बोली अनित्य है, ये उत्सव एवं आह्लाद क्षणिक हैं क्योंकि पूर्णिमा के पश्चात् अमावस्या का आगमन होता है।[1] गीता की शिक्षाओं को प्रतिपादित करते हुए कवि

---

1. वेरागी (वैरागी), सदु पहा ड़ो सोणियो', पृष्ठ 205।

'बेवस गीताञ्जली' मे कहते हैं—जो कर्म करेंगे उनको यथोचित फल अवश्य प्राप्त होगा। ससार रूपी खेत मे जो बोया जाएगा वही काटा जाएगा। आक का पौधा लगाकर कोई आम का फल नही खा सकता। प्रकृति की संहिता मे प्रत्येक त्रुटि के लिये दण्ड का विधान है। कवि ने इस कलियुग को 'कर युग' कह कर कर्मभूमि की संज्ञा दी है और कहा है कि यह ससार नही है अपितु एक चमत्कार है।[1]

सूफी मत का भारत मे प्रवेश सिन्धु प्रदेश से हुआ था इस कारण सिन्धी मुसलमान तथा हिन्दू अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु हैं। ईश्वरीय तत्व सृष्टि के कण-कण मे व्याप्त है, सूफी सन्तों ने इसे 'नूर-ए-इलाही' की संज्ञा दी है और परमात्मा के प्रकाश को सारे जगत में विद्यमान माना है, वही परमात्मा सृष्टि के कण-कण में सर्वव्यापी है। अपनी कविता 'कुदरत वारा' (कुदरतवाले स्रष्टा) मे कवि ने कहा है कि हे स्रष्टा! कोटि-कोटि लोगो की तुमने रचना की है। तुमने सहस्रों सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र और ग्रह निर्मित किये हैं जिनका कोई अन्त नही है। तुम ही सुमनों मे सुगन्ध का संचार करते हो, तुम ही मोतियो से सागर को भर देते हो, तुम ही सहस्रो रत्नो और माणिक्यों का सृजन करते हो। जब वृक्षो पर मंद समीर प्रवाहित होता है तब पत्तों की छम-छम नाद से तुम्हारी ही प्रतिध्वनि उठती है।[2]

सूफी मत के अनुसार इश्क दो प्रकार का है, एक इश्क मिजाजी (दैहिक भक्ति/प्रेम) दूसरा इश्क हकीकी (अशरीरी—निर्गुण भक्ति/प्रेम)। इश्क मिजाजी के

---

1. संसार आहे खेट जेकी पोखिबो सो पाइबो,
बूटो लगाए अक जो कीअ अम्ब जो फल खाइबो?
हर्हिक खता जे वास्ते थियणी सजा निर्वार आहि,
कलजुग चऊं, करजुग चऊं, संसार ना इसरार आहि॥

2 सभुर्कान तुंहिंजो साराह- कुदरतवारा।
निर्मल जोति नूर निजारा।
कोटां कोटि बणायइ घरव्यूं—सहसें मिज चड तारा कतियूं,
जिन जो अन्त न पारा—कुदरत वारा॥
गुलनि अन्दर सुरहाणि भरी थो, मोतियुनि सा महराण भरी थो
हीरालाल हजारा—कुदरत वारा॥

लिये सांसारिक नेत्रों का प्रयोग होता है जबकि इश्क हक़ीक़ी के लिये इन नेत्रों को बन्द करना पड़ता है। इन दैहिक नेत्रों का निमीलन होते ही आन्तरिक अनुभव की आखें खुल जाती है। अपनी पुस्तक 'शेर बेवस' के परिशिष्ट में दी हुई कुंजी में कवि ने इस बात को अत्यन्त सुन्दर रीति से समझाया है और कहा है कि ये दैहिक आँखें आत्मिक उन्नति के लिए बहुत बड़ी रुकावट हैं क्योंकि इन आंखों की सबसे बड़ी असंगति यह है कि ये एकत्व को अनेकत्व मे प्रतिभासित करती है।[1] पृथ्वी सूर्य के चारो ओर घूमती है पर इन आखों ने सूर्य को ही घूमता बताया है, अतः कवि ने इन आखो को बन्द कर तीसरे नेत्र को खोलने के लिये कहा है। सूफी शब्दावली में इस तीसरे नेत्र को कवि ने 'चश्म-बीना' कहकर सम्बोधित किया है।

परमात्मा अखण्ड एव कालातीत है, अनन्त है। सारा सगुण संसार जो इन दैहिक नेत्रों से दृष्टिगोचर होता है वह परमात्मा की लीला है अथवा माया है, जिसे सूफी सन्त खलकत कहते हैं। इस प्रकार की मीमांसा सूफी मन के सिद्धान्तो तथा अद्वैत वेदान्त के मध्य नैकट्य स्थापित करती है। सिन्धी के भक्तिकालीन महाकवि शाह अब्दुल लतीफ़ (सन् 1689–1752 ई०) ने भी इसी प्रकार के उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा था कि इस प्रियतम के दर्शन के लिये हमें इन आंखो की आवश्यकता नही है, उनसे मिलने के लिये इन नेत्रो की आवश्यकता नही है। सिन्ध के अद्वैत वेदान्तमार्गी कवि सामी (स्वामी शब्द का अपभ्रंश, 1743–1850 ई, 107 वर्ष की आयु) ने एकोऽहं ब्रह्मं द्वितीयो नास्ति' संस्कृत सूक्ति के अनुसार एक ही ब्रह्म की कल्पना की थी। 'बेवस' ने इन महान कवियो की कृतियों का गहन अध्ययन किया था तथा इस्लाम के एकेश्वरवाद एवं शंकर के अद्वैतवाद के बीच सामजस्य स्थापित कर सर्वाधिक सदाशयता का परिचय दिया। अपनी कविता 'दिल जे मन्दिर मे' (हृदय के मन्दिर मे) कवि ने स्पष्ट रूप से कहा है कि भिन्न-भिन्न धर्मों, मजहबो को देखकर हे जीव! तुझे घबराना नही चाहिये क्योंकि जिस प्रकार वाटिका मे कई प्रकार के पुष्प विकसित होकर उसकी शोभा बढाते हैं उसी प्रकार प्रत्येक धर्म सुन्दर गन्धमय फूल के समान है।[2] मनुष्य मे विद्यमान तृष्णायें उसे ऊपर से नीचे

---

1. शेर बेवस कुंजी, सदु पडा दो सागियों पृष्ठ 87

2. मुझु न मजहब मुख्तलिफ खा घणि अन्दर घबराइजी,
वाग़ दुनिया जा जुदा गुन सूंह सोम्या वास्ते ॥

की ग्रोर धराशायी कर देती हैं ग्रौर इन्ही ग्रन्तिम समय की तृष्णाग्रो के कारण मनुष्य को पुनः ग्रावागमन के चक्र में ग्राना पड़ता है। मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार में एक प्रच्छन्न लालसा निहित रहती है, प्रत्येक सांसारिक कृत्य की पृष्ठभूमि में पदार्थ संचय की प्रवृत्ति क्रियाशील है। हे प्रभु ! तुम्हारी कामना के ग्रतिरिक्त प्रत्येक वस्तु चिन्ता का कारण है।[1]

कवि की रचनाग्रों पर कबीर, गुरु नानक, मीरा ग्रादि ग्रन्य रचनाकारो की वाणी का गहरा प्रभाव रहा है। कबीर ने जब कहा था—

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गयी लाल।

तब उनके ग्रान्तरिक नेत्रों के समक्ष उन पर ब्रह्म के प्रसार का दृश्य ही ग्रपनी व्यापकता के लिए हुए दृष्टिगोचर हुग्रा था। इसी भावना को कवि ने ग्रपनी कविता "लालन लका़उ तुंहिंजो" (प्रियतम तेरा दिव्य दर्शन) में दूसरे शब्दो में ग्रभिव्यक्त करते हुए कहा है "ग्रगर मेरा शत्रु भी सामने ग्रा जाता है तो मुझे उसमें भी हे परमात्मा तुम्हारे ही दर्शन होते हैं। रात्रि के पर्दे के पीछे उस करतार (कर्ता) ने कैसे चमत्कार कर रखे हैं कि रात्र के बाद प्रभात की किरणें प्रकाश को विकीर्ण करती हुई प्रस्फुटित होती हैं। जिस प्रकार जयशकर प्रसाद ने बडे मार्मिक शब्दों में कहा था कि मनुष्य नियति का दास तथा प्रकृति का ग्रनुचर है उसी प्रकार नियति की प्रबलता को इसी कविता मे 'बेवस' ने ग्रनुमोदित करते हुए कहा है— "परमात्मा ने जन्म देने से पहले जन्मेच्छु ग्रात्मा के लिए पूरा प्रबन्ध कर दिया है।" बछड़े के जन्म के साथ ही गाय के थनो से दुग्ध-धारा स्रवित होने लगती है। ग्रगर कोई कमी है तो वह केवल हमारे विश्वास की है। जिस व्यक्ति की करनी ग्रौर

1. चाह केरे चोटतां फेरे थो कोटां कोट में,
ग्राहि रुवाहिश मे खराबी मोट मंशा वास्ते ॥
हर रवश ग्रन्दर हवस दरकार जर हर कार में
तो बिना हर चीज़ दुनिया चाह चिन्ता वास्ते ॥

कथनी में अन्तर है उसके वचनों और वक्तृता का दूसरों पर प्रभाव नही पड़ सकता ।''[1]

सूफी मत के अनुसार जीवन को परमात्मा का विशाल (दर्शन। प्राप्त करने हेतु सामान्यतया चार अवस्थाओं से गुजरना होता है। ये अवस्थायें हैं— (क) शरीयत, (ख) तरीकत, (ग) मार्फ़त और (घ) हकीकत।

शरीयत के अन्तर्गत रोजा, नमाज, जकात, तसबीह (माला) का जपना आदि धार्मिक पाबन्दियों की पालना करनी होती है। तरीकत के अन्तर्गत जीव को अपना कलब (अन्तःकरण) शुद्ध करने के लिए ज़िक्र-ए-कलब (स्वतः अन्तःकरण द्वारा स्मरण) का सहारा लेकर अभ्यास करना पड़ता है। मार्फ़त की अवस्था में जीव को किसी मुरशद अथवा आरिफ या दरवेश (पुण्यात्मा अथवा गुरु) के द्वारा (मार्फ़त) परमात्मा तत्त्व की साधना करनी पड़ती है। हकीकत अन्तिम अवस्था है जिसमें साधक परमात्मा तत्त्व का साक्षात्कार प्राप्त करता है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार संसार की सृष्टि ओम् से सक्रिय हुई है तथा इस्लामी धारणा के अनुसार पूरे आलम (संसार) की उत्पत्ति कुन या नूर से हुई है। कवि ने अपनी रचना 'इन्सान' में कहा है कि ब्रह्म को अपने आप को प्रकट करने की इच्छा हुई और उसने नूर से मानव की उत्पत्ति की क्योंकि नूर ही परमात्मा का अंश है। मानव का मुख ही स्रष्टा का दर्पण है, मानव की बुद्धि में स्रष्टा के प्रकाश का अंश है। मानव की रचना ही स्रष्टा के सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। मनुष्य देह द्वारा ही प्रेम की परिपक्व अवस्था प्राप्त कर जीव परमात्मा में मिल सकता है। सृष्टि के विकास के सोपान की सर्वोत्कृष्ट कृति मानव है।

वेवस-दर्शन मूलतः साधना, सेवा एवं कर्म का दर्शन है। यह दर्शन कहीं-कहीं अत्यन्त गूढ़ तथा साधारण बुद्धि के पाठक की ग्राह्यता से उपर उठ गया है।

---

1. दातर जनम दियण ते नइं सीर जी वहाए,
संसार में सफर सां पहिरी सभर अचे थो ॥....
रहिणीअ मे नाहि शामिल, कहिणीअ मे रब कामिल
अहिड़ीअ मिस्या जो बियनि ते मुश्किल असर अचे थो ॥

कवि ने सृष्टि की रचना के तीन कारण माने हैं। एक मूल कारण जिसे संस्कृत मे आदिकारण तथा अरबी मे मुसबब अल सबब कहकर सम्बोधित किया है । आदि कारण सभी कारणों का अन्तिम कारण है, यह कर्ता कारण है तथा इस अवस्था मे पहुँचने के पश्चात् जीवन-जगत् का कोई प्रश्न निरुत्तरित नही रहता । सृष्टि माया द्वारा सर्जित द्वन्द्व-रचना है, कवि ने जिसके दो कारण प्रस्तुत किये हैं । प्रथम वर्तमान कारण तथा द्वितीय उद्दीपन कारण । कवि व्यवसाय से अध्यापक थे, अतः उन्होंने अपने पाठकों को विद्यार्थियो के समान ही ये कारण समझाये है । यथा ऑक्सीजन एक गैस है जो जलने मे सहायता करती है, हाइड्रोजन भी एक गैस है जो स्वयं जलती है । इन दोनों के गुण तथा व्यापार अलग-अलग हैं, परन्तु दोनो की सन्धि से जल की संरचना होती है जिसके रूप, गुण तथा कार्य दोनो से भिन्न हैं । ससार का सकल प्रसार वर्तमान तथा उद्दीपन कारणो से सर्जित है तथा इन दोनों कारणों का मूल कारण आदि कारण है । गुरु नानक तथा कबीर ने इस मूल कारण को "नाम" से सम्बोधित किया है । विज्ञान तथा बुद्धि ने एक अवगुंठन डालकर आदि कारण से हमे परे कर दिया है और वर्तमान तथा उद्दीपन कारण-कार्य के द्वन्द्व मे हमें उलझा रखा है । नाम के द्वारा मानव अपने तीसरे नेत्र (चश्म-बीना) से सब को देख सकता है । जब इस प्रकार का ज्ञानोदय होता है तो कोई पराया प्रतीत नहीं होता । गुरुग्रंथ साहब के महला पाँचवाँ राग कानड़ा (पृष्ठ 1299) में कहा गया है—

> बिसर गई सब तात पराई,
> *अब ते साध सगति मोहि पाई ।*
> ना कोई बैरी नही बिगाना
> सगल संग हम कउ बनि आई ।

सिन्धु देश में गुरु नानक देव की शिक्षाओं का अत्यधिक प्रचार था । गीता, रामायण के साथ गुरुग्रंथ साहब की कई घरों व मदिरों मे स्थापना की गयी थी । ब्रह्म मुहूर्त की वेला मे सिन्धी लोग सिख धर्म की पुस्तको—सुखमणि साहब व जपजी साहब का पाठ करते थे । आज भी जहाँ सिन्धी समुदाय भारत मे पुनर्वासित है वहां ऐसे देवालय स्थापित किये गये है जिन्हें 'टिकाणो' कहा जाता है । टिकाणे का पुजारी ब्राह्मण न होकर अन्य जाति का हो सकता है । अब भारत मे आने के

पश्चात नई पीढ़ी का सम्मान टिकाणो के बजाय मंदिर-स्थापना की ओर अधिक है। सिन्ध मे सिख धर्म का आगमन कैसे हुआ उसकी भी एक रोचक वार्ता है। आज से डेढ सौ साल पहले सिन्ध के मुस्लिम शासको ने कई सिन्धी हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तन के लिये बाध्य किया, जिससे त्रस्त होकर सिन्ध के नौकरी-पेशा बुद्धिजीवी, जिन्हे "आमिल" के नाम से सम्बोधित किया जाता है, वे प्रतिनिधि-मण्डल लेकर महाराजा रणजीत सिंह (सन् 1780–1839) के समक्ष पेश हुए और अपने उपर धर्म-परिवर्तन सम्बन्धी होनेवाले अत्याचारों की कथा सुनाई। महाराजा रणजीत सिंह ने उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा कि आप अपने मदिरो में सिखो के धर्म-ग्रन्थ गुरुग्रंथ साहब की स्थापना कीजिए और मैं एक परवाना सिन्ध के हाकिमों को प्रेषित करता हूँ कि इन सिन्धी हिन्दुओ को धर्म-परिवर्तन के लिये बाध्य न किया जावे क्योंकि इनका गुरुग्रंथ साहब की शिक्षाओ मे विश्वास है। महाराजा रणजीत सिंह ने उस प्रतिनिधि-मण्डल को एक प्रति गुरुग्रंथ साहब की प्रदान की और सिन्ध के मुसलमान हाकिमों को सदेश भी भिजवाया, तभी से सिन्ध मे गुरुग्रंथ साहब का प्रचार रहा।

कवि 'बेवस' उत्तर सिन्ध के लाडकाणा नगर के निवासी थे जो मुल्तान तथा पंजाब के निकट था। कवि की कई रिश्तेदारियाँ मुल्तान मे थी जिसके कारण उनके कृतित्व पर हिन्दू दर्शन के अतिरिक्त गुरुग्रंथ साहब की शिक्षाओ का गहन प्रभाव दिखाई होता है। उसी कारण उन्होने "गुरु नानक जीवन कविता" नामक एक खण्ड-काव्य की रचना भी की।

इन सभी बातो के बावजूद कवि मूल रूप से कृष्ण भक्त थे तथा उन्होंने अपनी कविताओ मे प्रेम और श्रद्धा को पहला सोपान माना है। उनकी भक्ति-रचना के पद 'बेवस गीताजली मे संकलित हैं। कृष्ण-जन्म से लेकर बाल लीला, कृष्ण स्तुति, मुरली की महिमा, जन्माष्टमी, होली, कृष्ण सुदामा मिलन, गीता ज्ञान आदि सभी विषयो पर कवि ने पदों की रचना की है। अपनी रचना 'श्याम सुन्दर' मे कवि ने अपनी दास्य भाव की भक्ति को अभिव्यक्त करते हुए कहा है—" मेरे मन मे सदैव श्याम सुन्दर बस रहे हैं, बिना उनके नाम के मुझे और कुछ नहीं दिखता। अहंकार की आखों से हमें वह प्रियतम दिखाई नहीं देगा, नजरों से अन्तर्ध्यान होकर उस परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है, साधु का स्वरूप

चन्दन के समान होना चाहिये, जितना घिसा जाए उतनी ही अधिक सुगंध प्रदान करे।[1] पुष्टिमार्ग के कवियों की भांति कवि ने कृष्ण के बाल और किशोर रूप की भी उपासना की है, साथ में उन्होंने महाभारत के कृष्ण की लोक-रक्षक के रूप में भी स्तुति की है। उनकी कविताओं में एक भक्त की पूर्ण तन्मयता, एक दास का आत्म-समर्पण, एक उपासक का आह्वान, एक अध्यापक का लोकाचार सभी का सुन्दर सामंजस्य है। उनकी भक्ति की महानता यह है कि उन्होंने राम और श्याम में कोई भेद नहीं माना। हिन्दी के कवियों के समान उनके दल में सख्ती नहीं है; जहाँ उन्होंने कृष्ण की स्तुति की है, वहाँ वे राम के समक्ष भी नत-मस्तक हुए हैं।

यद्यपि 'वेवस' सगुण भक्ति के उपासक हैं फिर भी वे स्पष्ट कहते हैं कि जब साधक की उपासना में परिपक्वता आ जाती है तो उसके लिये स्वतः सगुण से निर्गुण की ओर अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अपनी कविता "शाह सवारी" (विराट की रथ-यात्रा) में उन्होंने कहा है कि 'हे जीव! अपने पार्थिव नेत्रों को बन्द करो, क्योंकि आत्मारूपी राजरानी मनुष्य देही के रथ पर सवार होकर आ रही है। यह विराट का रथ है जिसके स्वागत के लिए जोवात्मा रूपी सभासद, हृदय रूपी दरबार में इकट्ठे होंगे। प्राणायाम रूपी पवन उसी के वेग से चल रहा है जिससे विकार रूपी तृण उड़कर दूर हो रहे हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है—"जो चिन्तन के क्षेत्र में अद्वैतवाद है वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है।" विराट की रथ-यात्रा उनकी प्रमुख रहस्यवादी कविता है। कवि ने अपने काव्य में इस्लाम के एकेश्वरवाद, कबीर और नानक की निर्गुण भक्ति, सूफियों के इश्क हकीकी तथा हिन्दुओं के अवतारवाद का सुन्दर मिश्रण किया है।

कवि की कृतियों में दार्शनिकता व आध्यात्मिकता के अतिरिक्त चिन्तन व युग-धर्म पर आधारित जनसेवा तथा भक्ति को प्रधानता दी गयी है। अपनी कविता 'गुप्त गंगा ज्ञानजी' (ज्ञान की गुप्त गंगा) में कहा है कि आज के युग की महान् विभीषिका यह है कि हमने धर्मोपदेशों को 'किताबों की कैद में बन्द कर रखा है।' धर्म वास्तव में मन की अवस्था है। जिस हृदय में दूसरों के प्रति जितना अधिक प्रेम और दूसरों की पीड़ा को अनुभव करने की भावना होगी उतना ही वह मन

1. 'श्याम सुन्दर', सदु पहादो सागियो, पृष्ठ 200।

अधिक धर्मनिष्ठ होगा। मानव शक्ति का क्षय जितना धार्मिक लड़ाईयों के कारण हुआ है उतना राजनैतिक उद्देश्यों के कारण नहीं हुआ। जल के समान मन की गति सदैव अधोगामी होती है किन्तु विवेक द्वारा उसकी गति को ऊर्ध्वगामी किया जा सकता है। अन्न को भूसी से अलग करने के लिए कूटा जाता है, हृदय के परिष्कार के लिए जीव को अनेक योनियो में से घिस और पिस कर निकलना पड़ता है।

कवि की आध्यात्मिकता नकारात्मक तथा पलायनवादी नही है, वह जीव को निष्क्रिय बैठकर केवल पूजा-उपासना में समय व्यतीत करते रहने पर बल नही देती। उसमे भौतिकता का परिष्कार है, तिरस्कार नही। संसार मे रहकर पूरे सांसारिक कृत्य करते हुए भी संसार से निर्लिप्त रहने का सदेश है। 'बेवस' जी स्वयं एक आदर्श अध्यापक थे तथा उन्होने प्रशंसनीय शिक्षण-सेवाओ के कारण स्वर्ण-पदक प्राप्त किया था। वे अपने शिष्यो मे देश-भक्ति, जन-सेवा तथा सच्चरित्रता की भावना फूंकते थे। सायकाल को पूरे परिवार के साथ भगवान की आरती उतारते थे व भजन-कीर्तन का कार्यक्रम आयोजित करते थे। जन्माष्टमी के अवसर पर प्रभातफेरियो का सचालन करते तथा विद्यार्थियो को सदाचार की शिक्षा देते। गीता तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीताञ्जली पर प्रवचन देते। उन्होने प्रवृत्ति मार्ग तथा निवृत्ति मार्ग मे पूरा सामजस्य स्थापित कर उसे अपने जीवन पर घटित किया। उन्होंने अपनी दिनचर्या तथा सादा रहन-सहन से इसे पुष्ट भी किया। अपनी कविता 'किथे ?' (कहाँ ?) में कवि ने पूछा है कि परमात्मा कहाँ है ? और स्वयं ने ही उत्तर दिया है कि श्रीकृष्ण मथुरा और गोकुल को छोड़कर चले गये है जगपति यमुना नदी मे भी नही हैं।[1] अगर तुम्हे उस मुरलीधर के विषय मे मालूम करना है तो शहरो मे जाकर पूछो, जहाँ वे सेवा-कार्य कर रहे हैं। अपनी कविता 'दिल जे मन्दर मे' (हृदय के मन्दिर मे) उन्होने इसी प्रकरण को लेते हुए कहा है कि परमात्मा से अगर मिलना है तो किसी जरूरतमंद और दीन-दुखी की पुकार मे ढूंढो। 'खीर क्षेत्र' (क्षीर क्षेत्र) कविता मे उन्होने जीवन में मध्यम मार्ग का

1. थ्यो तजे मथुरा एं गोकुल, नाहि जमुना जगपति,
शहर-शेवा मे वञी पुछु, मुहब मुरलीधर किथे ॥

अनुसरण करने की व्याख्या करते हुए कहा है कि अधिक ज्ञान भी अच्छा नहीं है और अधिक अज्ञानता भी अच्छी नहीं। तानपूरे के तार अधिक जानकारी रखने-वाले से ही खीचते समय टूटते हैं। अधिक अज्ञान भी अच्छा नहीं जैसे नामी पहलवान रुस्तम को यह जानकारी नहीं थी कि उसका प्रतिद्वन्द्वी उसका सगा पुत्र सोहराब ही है। साधक का सफर तब सफल होगा जब वह मध्यमा प्रतिपदा मार्ग को अपनायेगा।[1]

इस मार्ग पर चलने के लिए "अहम्" को खोना होगा। अहम् उस सूखी घास के समान है जो जीवन रूपी हरी खेती को भस्मसात कर देती है। आगे स्पष्ट किया है कि जगत मे कोई भी चीज दूसरी वस्तुओं की तुलना मे अधिक मूल्यवान नहीं है। वस्तु की बहुमूल्यता हमारा दृष्टिकोण व हमारी लालसा की गहनता ही निर्धारित करती है। जितना मोह व ममत्व अधिक होगा उतनी मात्रा मे ही उस वस्तु का मूल्यांकन अधिक होगा। एक वीरान टापू पर लुढक कर पड़ने-वाले व्यक्ति के लिए उस टापू पर सोने का ढेर या पत्थरों का ढेर दोनो समान है क्योंकि उसे तो केवल अपनी जान प्यारी है।

जीवन के वैचित्र्य मे कवि को एकत्व की अनुभूति होने लगी है। निर्गुण व सगुण मे उसे कोई विवाद या असंगति का आभास नहीं होता। अगर कोई त्रुटि है तो वह अहमन्यता तथा स्वार्थ के कारण है, भौतिक विकास तथा आत्मिक उन्नति के मध्य विकराल अन्तराल के कारण है, बौद्धिकता और भावात्मकता के बीच विद्यमान अगाध गर्त के कारण है। परमात्मा ने निर्गुण होते हुए भी सगुण की रचना की है, निर्गुण होते हुए उसने गुणात्मक सृष्टि की रचना की। इन्ही

---

1. थी टूटे तार तम्बूरे जो तिरवीअ ताण करे,
   तार अनुभव थी टूटे महज़ घणीअ जाण करे॥
   किअ न सोहराब जे दीदार लाइ रुस्तम थे सिक्यो,
   पीउ, पुट सां प्यो लड़ी पोइ त अणजाण करे॥
   नाहि अणजाण चडी, नाहि चडी जाण घणी
   थिरा सफर साबि विचीअ वाट जे अगवाण करे॥

भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुए कवि ने कहा है–"आदि काल से ही तुम अपार हो, अपनी सरचना (सृष्टि) द्वारा ही तुम अनन्त भासित होते हो। स्वयं बेरंगी (रंगहीन=निर्गुण) होते हुए भी अपनी सगुण सृष्टि (रंगपुर) मे नाना प्रकार के रगो की संरचना करते हो।[1]

'बेवस' के आध्यात्मवाद पर कबीर (सन् 1425–1518) व नानक (सन् 1469–1538) के अतिरिक्त सिन्ध के मध्ययुगीन भक्तिकालीन रहस्यवादी कवि शाह अब्दुल लतीफ (सन् 1689–1752 ई०) का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। शाह साहब ने अपने सात खण्ड-काव्यो की सात नायिकाओं की प्रसिद्ध लोक-कथाओं द्वारा आत्मा और परमात्मा के अविच्छिन्न सम्बन्ध का विस्तृत वर्णन किया है। उनके खण्ड-काव्य नायिका प्रधान है तथा नायिकायें जीवात्मा के रूप मे प्रतीक रूप मे प्रयुक्त हुई हैं। 'बेवस' ने अपने काव्य में जीवात्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति को उजागर किया है जिससे जीवात्मा अपना सम्बन्ध उस अनन्त से जोड़ने मे प्रयत्नशील है। 'बेवस' ने रहस्यवादी कवियो के समान प्रतीकवादी काव्य या उपमानो का प्रयोग नहीं किया है। अपितु इसके विपरीत एक श्रद्धालु भक्त सदृश परमात्मा का यशोगान किया है, प्रातःकाल उठकर हरि का स्मरण किया है, नम्रता एवं सरल हृदय से प्रभु की वन्दना की है। जहां-जहा उनकी वन्दना के पद आते है, ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की निरीह, निश्छल आत्मा प्रभु की अनुकम्पा की याचना कर नत मस्तक हो रही है। ऐसी रचनाओ मे शब्द-चयन हृदयस्पर्शी, सरस और अत्यन्त ही रागात्मक होकर हृतन्त्री के तारो को छूकर आत्म-विभोर कर लेता है।

कबीर, नानक, राजा राममोहन राय आदि ने धार्मिक कुरीतियों तथा पाखण्डों पर कड़ा प्रहार किया था। 'बेवस गीतांजली' की कविता 'सची शान्ति' (सच्ची शान्ति) मे कवि ने धार्मिक कुरीतियो, पाखण्ड तथा अन्धविश्वास पर करारा प्रहार किया है और कहा है – हे जीव ! तुम निर्जन मरुस्थलो तथा वनों मे क्यों भटक रहे हो, सच्ची शान्ति तो हरि के चरणो मे ही है। पेड़-पौधों, पानी-पाषाण के पूजन मे भ्रमित हो, तुमने सारा जीवन व्यतीत कर दिया

1. 'जोति', सदु परादो सागियो, पृष्ठ–2।'

फिर भी जड़-चेतन की ग्रन्थि को उद्घाटित करनेवाला ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके ग्रोर उस पर सोने जैसे मनुष्य जीवन को जंग लगा दिया।[1] ग्राज के मानव के दोहरे मापदण्डोवाले व्यक्तित्व की ग्रालोचना करते हुए कवि ने कहा है—"व्रत रखते हो, उपवास करते हो ग्रोर उसके बाद ग्रपना मनोरंजन कुकृत्यो से करते हो। व्रत के समय सूर्य-चन्द्र को जल की ग्रंजलि देते हो, गाय के दर्शन करते हो किन्तु तुम्हारा पूरा ध्यान व्यंजनो मे ही केन्द्रित रहता है। दान केवल सम्मान-प्राप्ति व दिखावे के लिए करते हो।" कविता के ग्रन्त मे कवि ने कबीर के ग्रनहद नाद, सोह तथा सुरत-शब्द की महिमा करते हुए ग्रात्मारूपी गुड़िया को गगन-मण्डल मे घर के लिए ग्राहूत किया है।

उनका सुकोमल मन बच्चों जैसा निश्छल, निरीह, उनकी कविताग्रो मे पार्थिव प्रेम का वर्णन गौण है ग्रोर ग्रलौकिक के प्रति ग्राकर्षण ग्रधिक है, ग्रदृश्य को देखने की जिज्ञासा बलवती है, प्रेम के पथ का पथिक बनकर प्रेम नगर के सुन्दर मन्दिर मे प्रवेश करने के लिए कवि का हृदय उद्वेलित है। 'बेवस गीतांजली' की कविता 'प्रेमगीत' में कवि ने कहा है कि हे प्रेमी! तुम प्रेमनगर की तरफ चलो जहा ग्रत्यन्त सुन्दर मन्दिर है, उसको ग्रपनी दृष्टि में धारण करो। प्रेम नगर के घर-घर मे प्रेम की महिमा ग्रोर पूजा है। जब मैंने ग्रपने प्रियतम से प्रेम किया तो मैंने उसे ग्रपने ही घर मे पाया।[2] प्रेम की चढाई ग्रत्यन्त कठिन है, प्रेम का प्रताप ग्रनोखा है। प्रेम के पथ पर प्राणों की बलि देकर प्रभु के घर पहुंचो।

गंगा जूं लहिरूं (गंगा की लहरें) कविता मे कवि की समर्पण की भावना ग्रष्टछाप के कवियो की प्रभु-ग्रनुकम्पा की चेतना से ग्रावेष्टित है। "कैसे लिखूं,

1. सची शान्ति (सच्ची शान्ति), सदु पहाढ़ो सागियो, पृष्ठ–202।

2. हल प्रेमी प्रेमनगर मे।
प्रेमनगर, ग्रति सुन्दर मन्दर, रख तू पंहिंजी नज़र में,
प्रेम जी महिमा, प्रेम जी पूजा, प्रेमनगर घर-घर मे,
प्रेम लगाए प्रीतम सां मूं, पातो प्रीतम घर मे,
हल प्रेमी प्रेमनगर मे॥

अल्प ज्ञानी हूं, क्या लिखूं तुम्ही बताम्रो । मैं बासुरी को बजाऊंगा किन्तु मेरे गालो को तुम्ही फुलाम्रोगे, मैं पैदल चल पड़ूंगा और मार्ग तुम दर्शाम्रोगे । हे कृपा-निधान ! तुम ही इस बेवस (निर्बल) के बल हो.....इस असीम ब्रह्माड मे, जिसका आदि और अन्त नही है, उसे सृष्टि के अटल नियमो मे तुमने बाध रखा है ।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे भारत मे एक ऐसे वर्ग के मनीषियो, साधुओं, जन-सेवियो, स्वतन्त्रता-सेनानियो, चिन्तकों, कवियो और लेखकों का प्रादुर्भाव हुआ जो एक ओर देश की पराधीनता से खिन्न थे और दूसरी ओर धार्मिक व सामाजिक कुरीतियों को मिटाना चाहते थे । हम विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, राजा राममोहन राय, महात्मा गाधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, तथा साधु वासवाणी इनमे से प्रमुख थे । इन्होने भारत की प्राचीन सस्कृति और गरिमा को विश्व के समक्ष आदर्श के रूप मे प्रस्तुत किया । इनके प्रभाव से साहित्य अछूता नही रह सका तथा साहित्य-सेवियो ने अपने नायक और नायिकाओ को विभिन्न गुणो से सम्पन्न बताते हुए जन-सेवक के रूप मे भी प्रस्तुत किया । 'प्रिय-प्रवास' मे अयोध्यासिंह 'हरिऔध' ने अपनी नायिका राधा को जन-सेविका के रूप मे दीन-दुखियो तथा रुग्णो की सेवा मे रत दर्शाया है । 'बेवस' ने अपनी रचना 'सोचकर' मे बड़े मार्मिक शब्दो मे कहा है 'आज गोपाल गोकुल मे नही है, न वह मथुरा मे बस रहा है हमे श्याम को प्राप्त करने के लिए सेवा-मन्दिर की ओर ही अग्रसर होना होगा । जिस हृदय मे दूसरो की पीडा की अनुभूति नही है, वह हृदय पत्थर से भी गया-बीता है, अपने भाईयो को भूखा देख हमे खुश होकर खाना नही खाना चाहिये ।[1]

---

1. न अजु गोपाल गोकुल मे, न मथुरा मे वसे मोहन,
असा खे श्याम लाइ शेवा, मन्दर मे पाण नियणो आहि ॥
न आहे दर्द जहि दिल मे, पत्थर खां सा परे चइजे,
दिसी 'बेवस' बुखिया भाउर, न खुश थी खाउ खियणो आहि ॥

'बेवस' का जीवन-दर्श जन-सेवा का जीवन-दर्शन था। उनका भक्तिमूलक प्रेम विशुद्ध, प्रबुद्ध, निर्लिप्त, परिष्कृत और निर्माणमूलक था। उस प्रेम में पूर्ण बलिदान और पूर्ण समर्पण की भावना है। कवि ने अपने आप को सदैव गौण रखा है तथा प्रभु-प्रेम को ही प्रधानता दी है।

6

नारी-चित्रण

सिन्धी साहित्य में नारी का चित्रण भक्तिकालीन कवि शाह अब्दुल लतीफ ने (सन् 1689-1752 ई०) अत्यन्त ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी रूप मे किया है। उन्होने नारी का सर्वांगीण चित्रण स्वपतिका नायिका, प्रेमिका, बहिन तथा सखी आदि के रूप में किया है। उनकी नायिकाएँ सुन्दर, सौम्य, सच्चरित्र बुद्धिमति और आत्मोत्सर्ग मे विश्वास करनेवाली हैं। उनकी नायिकाओं में से एक मारुई को वासुदेव सिन्धु भारती ने 'सिन्ध की सीता' की संज्ञा से विभूषित किया है। अमरकोट का शासक उमर सूमरा उसके सौन्दर्य की ख्याति सुनकर, मुसाफिर का वेष धारण कर उसे पनघट से भगा ले जाता है। मारुई कारावास में बन्द की जाती है फिर भी हाकिम उमर सूमरे द्वारा यातनाएँ भुगतने के बाद भी वह अपने सतीत्व पर कायम रहती है। शाह अब्दुल लतीफ की अन्य नायिकाएँ मूमल, लीला, सोरठ तथा नूरी अपनी सुन्दरता, स्त्री-सुलभ लज्जाशीलता, पतिव्रता धर्म, वीरता, निडरता आदि के लिए अपना विशेष स्थान रखती हैं।

शाह अब्दुल लतीफ के पश्चात् आधुनिक काल मे 'बेवस' ने ही नारी का चित्रण विशद् पृष्ठभूमि मे किया है। यद्यपि उन्होने किसी महाकाव्य की रचना नही की है फिर भी अपनी विविध कविताओं में नारी का अद्वितीय चित्रण किया

है। इनमें से कुछ प्रमुख कविताएं हैं—नारी (शेर बेवस), स्त्री (शेर बेवस), नारी विद्या (सीरी शेर), स्त्री महिमा (बेवस गीतांजली) आदि। नारी-चित्रण मे उनका दृष्टिकोण आदर्शवादी रहा है। उन्होने मैथिलीशरण गुप्त तथा महादेवी वर्मा के समान अबला जीवन की कहानी का चित्रण करते हुए तथा उसके 'आंचल मे दूध व आखो मे पानी' बताते हुए 'नीर भरी बदली' की तरह कही उसे अश्रुपुरित तथा पुरुषों द्वारा तिरस्कृत और परित्यक्ता बताया है तो कही उसे भावी सन्तान की वीरमाता तथा वीरांगना के रूप में प्रस्तुत किया है और कहीं उसे महाबली कहकर सम्बोधित किया है।

अपनी कविता 'नारी' मे कवि ने उसे आदि शक्ति के रूप मे प्रस्तुत किया है जो सारे संसार को भस्मीभूत करने की क्षमता रखती है। वह उस नदी के समान है जो अतिवृष्टि के चरमोत्कर्ष पर होने पर भी अपने संयम रूपी किनारो को नही तोड़ती। जहाँ ऐसी नदियां और नीतियां हैं वह देश विपुल धन-धान्य से सम्पन्न होगा। कविता के अन्तिम दो छन्दो मे कवि ने नारी को सम्बोधित कर उद्घोषणा की है—"हे नारी! तुम अगर अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच जाओ तो उस देश में तुम्हारी गरिमा के कारण कोई भी व्यक्ति पुरुषत्वहीन नहीं हो सकता।[1] शक्ति का प्रतीक होने के साथ-साथ तुम भक्तिभाव मे प्रवीण सकल कलाओ से सम्पन्न हो तथा तुम्हारे लिये कोई भी उपमा प्रस्तुत करना सारहीन है।

जयशंकर प्रसाद ने कामायनी मे संस्कृति का नये सिरे से विकास मनु और श्रद्धा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'बेवस' ने अपनी कविता 'स्त्री' मे संसृति के विकास को पुरुष और प्रकृति के द्वैत से आरम्भ किया है। जब उस विराट को अपने-आपको प्रकट करने की इच्छा हुई तो उसने अपने सुन्दरतम अंश से सर्वप्रथम स्त्री (प्रकृति) की सरचना की। निराकार और साकार के सम्मेलन से पुरुष और प्रकृति का प्रादुर्भाव हुआ जिससे ससृति के विकास क्रम मे द्रष्टा और दृश्य की लीला का समारम्भ हुआ। मलयानिल ने मुकुलो के मन मे मनसिज का डेरा डाला। पुरुष-प्रकृति के संगम से संसार के विकास का विलास-क्रम आरम्भ हुआ। नारी

1. ज़ाइफा ! पूरे अगर ज़ोर ते पंहिजे तूं अची,
कौम मे हून्द किथे मर्द न मर्दूंद रहे।

के प्रच्छन्न मनोभावों में इतनी गहराई है कि वह अपने आत्मबल से विचाररूपी नये मोती चुनकर ले आती है और संसार मे युगान्तर का सूत्रपात करती है। अपनी आन्तरिक शक्ति से महान् व्यक्तियों को जन्म देती है जो संसार में प्रकाश-स्तम्भ सदृश अज्ञानता की कालिमा को तिरोहित कर देते हैं और दिशाभ्रान्त को पथ-प्रदर्शित करते हैं।[1] कवि मूलतः आदर्शवादी है। नारी के पतिव्रता धर्म में उसका अटल विश्वास है, वह कहता है कि गर्भावस्था में स्त्री जब पति का ध्यान धारण करती है तो पुत्र की मुखाकृति पिता-सदृश ही होती है। कविता के अन्तिम चरणों में कवि नारी के नि.स्वार्थ और बलिदान पूर्ण जीवन की ओर इंगित करते हैं कि वह जीवन की बलिवेदी पर सस्नेह अपने आपको न्योछावर कर देती है। 'बेवस' कहते हैं कि उसका उपकारपूर्ण जीवन यशोगान के योग्य है।

भारत-विभाजन से कई वर्ष पूर्व ही 'बेवस' जी ने तत्कालीन सामाजिक सुधारकों की भांति महिला शिक्षा कार्यक्रम पर बल दिया था। अपनी कविता 'नारी विद्या' में उन्होंने पूरी दलीलें देकर नारी-शिक्षा को प्रोत्साहित किया है। कविता की प्रथम पंक्तियों में कवि ने कहा है कि जिस भवन की नींव कमज़ोर होगी वह भवन बेकार होगा। स्त्री-शिक्षा समाज और राष्ट्र की नींव के समान है। दो पंखों के साथ ही पक्षी उड़ सकता है, जिस पक्षी का एक पंख निष्क्रिय है वह लाचार हो जाता है, उसी प्रकार जो प्राणी पक्षाघात से पीडित हैं वह भी परवश हो जाता है। विद्वान पति और अनपढ़ पत्नी के अनमेल विवाह से गार्हस्थ्य जीवन मे कभी तनाव भी उत्पन्न हो सकता है। कवि ने एक अध्यापक के नाते भी स्त्री-शिक्षा को

---

1. पुरुष प्रकृति ठंही जातीअ सिफातीअ मां थिया,
थियो तमाशो तुरत जारी दीद में दीदार जो ॥
थे नसीमी हीर जारी मुहब्बतो मुखड़ियूं टिड़ियूं,
वसुल जो वारो वरियो थियो सिलसिलो संसार जो ॥....
....स्त्रीअ जे गुप्त जज़िवन मे घणो ऊन्हो असर
थी कढे दिल जे सिदफ़ मा मोती नि वीचार जा ॥
देह जा रोशन दिया थी पाण मां प्रघट करे,
थी अधारो गुम करे अज्ञान जे अन्धकार जो ॥

प्रोत्साहित किया। वैसे भी यह लिखना अप्रासगिक नहीं होगा कि भारत में रहने-वाले सिन्धी समुदाय में नारी-शिक्षा (उच्च प्राथमिक-मिडिल स्तर तक) नब्बे प्रतिशत के ऊपर है। 'बेवस' कहते हैं - नारी-शिक्षा आन्दोलन समाज की कुरीतियों को जड़ से ही उन्मूलित कर देगा। संसार के जो भी सभ्य देश हैं उनमें शिक्षित महिलाओं का विशेष योगदान रहा है।

हमारी संस्कृति के मनीषी मनु ने कहा है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' अर्थात् जहां नारी की पूजा होती है वहीं देवता निवास करते हैं। अपनी ही रचना 'मात गोद' (माता की गोद) मे कवि ने माता की गोद को संसार की सबसे बडी पाठशाला बताते हुए संसार के सभी महान पुरुषों व वीरों की निर्माण-स्थली माता की गोद को बताया है। वे कहते हैं– अगर कहीं सदैव वसंत ऋतु जैसा हर्षोल्लास है तो वह माता की गोद में है, अगर कहीं बिना कांटों के गुलाब है तो माता की गोद मे है। पूर्णानन्द व अमृतरस माता की गोद में ही उपलब्ध है।[1] अपनी कविता 'स्त्री महिमा' (पुस्तक-बेवस गीतांजली) में कवि ने उपर्युक्त सस्कृत से मिलती सुभाषित वाणी में कहा है कि सुख शांति और सम्पत्ति का वहीं निवास होता है जहा स्त्रियो का आदर सत्कार होता है। नारी को जहा उन्होंने कोमलांगिनी बताया है वहाँ उसका आह्वान करते हुए कहा है कि तुम परवश अबला न होकर महाबली हो और तुम्हारे पास स्त्रीत्व का हथियार सबसे बड़ा हथियार है। जिस प्रकार कांटा फूल का रक्षक है, उसी प्रकार लज्जाशीलता नारी की रक्षक है। नारी की सरल व कोमल प्रकृति का लाभ उठाकर पुरुष ने उसके साथ वचना की व उसकी देह का व्यापार किया है। दहेज प्रथा पर करारी चोट करते हुए कवि कहते हैं कि कई विवाहो मे केवल दहेज के सौदे के बाद ही तुम्हे अंगीकार करते हैं और विवाह के पश्चात् भी तुम्हारे पीहरवालो का ससुरालवाले मास नोचते रहते हैं। कुछ समाजो मे दहेज प्रथा इतनी गंभीर है कि पुत्री के जन्म लेते ही घर मे विषाद-लहर फैल जाती है। अन्त में कवि ने नारी के दु:खो का उत्तरदायी नारी जाति को ही

---

1. बेमौसमी बहार ? त माता जी गोद में,
   थो गुल सुर्ख़ बेख़ार त माता जी गोद में,
   आनन्द को अपार त माता जी गोद में,
   पूरन खपे प्यार त माता जी गोद मे,

माना है क्योंकि नारी का शोषण करनेवाली मुख्यतया नारी ही है, इसलिये कवि उसे अबला से सबला बनने के लिए उद्यत करते हैं।[1]

जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में नारी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा है कि –

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत-नग-पग-तल में।
पीयूष स्रोत-सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में ।।

लेकिन कवि 'बेवस' ने नारी को आदि शक्ति के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हुए नारी के अनेक गुणों में से श्रद्धा को उसका एक गुण बताया है। भारतीय दर्शन के द्वैतवाद के अनुसार पुरुष प्रकृति के द्वैतवाद मे नारी को महाबली और कोमालागिनी कहकर उसके व्यापकतर व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया है।

---

1. पंहिंजे दुखनि लाइ तलाहिण तूं पाण आंहिं,
हर मुश्कलात लाइ जिम्मेवार स्त्री !
'बेवस' एं अबला नांहिं तूं, लेकिन महाबली,
हथियार खां सवाइ तूं हथियार स्त्री ।।

7

बाल-साहित्य

सिन्धी साहित्य में बाल-साहित्य की कमी सदैव महसूस की गई है। 'बेवस' आधुनिक काल के पहले कवि हैं जिन्होने अपनी लेखनी को इस ओर अग्रसर किया। 1935 ई० में 'गुलफुल' नामक बाल-साहित्य की पत्रिका का प्रकाशन हुआ जिसके संचालक मेलाराम, मंगाराम वासवाणी तथा फतहचन्द वासवणी थे। इस पत्रिका के अलावा दादा शेवक भोजराज प्रसिद्ध गांधीवादी ने 'बालकनि जी बारी' के तत्वावधान मे 'गुलिस्तान' नामक बाल-साहित्य की पत्रिका का समारंभ किया। 'बेवस' जी ने समय-समय पर इन पत्रिकाओं के लिए बच्चों की सुन्दर शिक्षाप्रद कविताओं की रचना की। तदुपरान्त उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'मौजीगीत' का प्रकाशन हुआ। विषय-विविधता के विचार से इस पुस्तक मे गुब्बारे से लेकर घरौंदे तक, पशु-पक्षियों से लेकर काठ के घोड़े तक अपनी लेखनी का प्रयोग किया है। उनकी प्रसिद्ध बाल कविताएं हैं—कागज की नैया, रेल झूला, प्यारा गुब्बारा, घरौंदा, फुरतीला मुन्ना, प्यारा घोड़ा आदि।

कविताओ मे बाल-सुलभ संस्कारो का निरीक्षण, बाल मनोविज्ञान का अध्ययन, अनुभूति की गहराई, कल्पना और शब्द-चयन के साथ गेयता की विशेषताएँ हैं। कवि गाकर कविता-पाठ करने मे सक्षम नहीं थे, किन्तु उनके

साथियों व विद्यार्थियों ने उनकी रचनाओं का सस्वर पाठ कर उन्हें अमर कर दिया। प्रोफेसर राम पंजवाणी कवि की कविताओं का अपने मधुर कण्ठ से पाठ करते थे इसलिए 'बेवस' जी उन्हें 'गूंगे की जबान' कहकर सम्बोधित किया करते थे।

कहाँ 'मोजीगीत' की तुतली कविताएं कहाँ 'शेर बेवस' पुस्तक की दार्शनिक गूढ़ गुत्थियाँ! लोगों को विश्वास नहीं हुआ जब कवि की बाल-साहित्य की कविताएँ प्रकाशित हुईं। 'बेवस' सर्वतोमुखी प्रतिभा के कवि हैं। 'मोजीगीत' के प्रकाशन से बाल-जगत में एक आन्दोलन-सा आ गया। घर-घर में बच्चे इन कविताओं को गाते व उसके साथ कागज़ की नावों को तैराते। कभी लकड़ी के घोड़े पर बैठ उनसे 'बेवस' की कविता 'प्यारा घोड़ा' के वार्तालाप दुहराते और गाते, कभी दो बच्चे दो गुब्बारे लेकर 'प्यारा गुब्बारा' कविता का सस्वर पाठ करते। सावन में झूलों को पेड़ पर लगाकर 'झूला' कविता का आनन्द लेते। बचपन में मेरी सबसे प्रिय कविता 'मोजीगीत' पुस्तक की 'फुर्तिला मुन्ना' थी, जिसे कवि ने बड़े नाटकीय ढंग से दृश्य-विधान शैली का सहारा लेकर अत्यन्त प्रभावशाली रीति से प्रस्तुत किया है। एक छोटा मुन्ना सर पर खादी टोपी पहने हाथ मे काला छाता लिए घूमते-घूमते नदी के तट पर पहुंचता है। वहीं एक मगर मुन्ने पर आक्रमण करने के लिए लपकता है। मुन्ना फुर्ती से पीछे हटता है तो देखता है कि एक बब्बर शेर उस पर हमला करने हेतु कूद रहा है। मुन्ने ने फुर्ती और चतुरता से काम लिया और अपने ऊपर छाते की ओट करके जमीन पर लेट गया। शेर छाते के ऊपर से कूद गया और जाकर सीधे मगर के खुले हुए मुंह में पड़ा। मगर और शेर बुरी तरह से घायल हुए, मुन्ना छाते और टोपी को वहीं छोड़कर अविलम्ब घर पहुंचा।[1]

बालक का भाव-प्रवण मन अनन्त आकाश को देखकर विस्मयातिरेक से नाना प्रकार के प्रश्नों की बौछार करने लगता है। टिमटिमाते मनोरम तारे मानो उसका आह्वान कर रहे है कि आओ हमारे पास हम तुम्हारे लिए एक नई दुनिया के द्वार का उद्घाटन करने के लिए आंख-मिचौनी के मूक स्वरों मे तुम्हें बुला रहे

1. 'फुड़्‌त छोडकर', सदु परादो सागियो, पृष्ट-165।

हैं। 'बेवस' का बाल-पाठक भला अन्धेरे की काली चादर को कैसे पार करे ? वह तारों को मौन-निमन्त्रण देता है कि आओ तारकगण आओ ! मेरे साथ खाना खाओ, अपना खाली मुँह मत मटकाओ। आओ, लुक-छिप खेल रचायें, एक-दूसरे को बहलाएं। तुम्हारे स्निग्ध प्रकाश से पथिक का पथ-प्रदर्शन होता है। दिन मे तारे क्यों नही निकलते ? कवि का बाल-हृदय स्वयं ही उत्तर देता है कि सूर्य उनको हड़प लेता है।[1]

उनकी कविता 'रेल' के प्रकाशन से बाल-जगत में एक आन्दोलन-सा आ गया। शिशु-पाठशालाओं के वार्षिकोत्सवों पर बच्चे खुद इंजन बनते और कुछ बच्चे गाड़ी के डिब्बे बनते। एक बच्चा झंडी और बत्ती लिए हुए गार्ड बनता और इस कविता को मंच पर उतारा जाता। डिब्बों मे गुड़िया और खिलौने होते, लाल झण्डी पर गाड़ी रुकती, हरी झण्डी पर आगे बढ़ती। उत्सव समाप्त होने के बाद बच्चे घरो में कई दिनों तक 'रेल' कविता गाते रहते और मां-बाप से अटपटे सवाल करते कि गाड़ी लाल झण्डी पर क्यों रुकती है ? इंजन काला क्यों है ?

'बेवस' के बाल-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी गेयता और बच्चो द्वारा दी गई मान्यता है। कविताएं कोरी मानसिकता से बोझिल न होकर अन्तर्मन को छूनेवाली गीतिकायें हैं जिनमें एक प्रवीण अध्यापक के बाल-मनोविज्ञान के गहन अध्ययन की छाप मिलती है। 'बेवस' जी के मकान के बाहर चौक मे प्रमुख बाल संस्था 'बालकनि जी वारी' की साप्ताहिक सभा होती जिसमे बच्चे खाते, गाते, खेलते, पहेलियां बुझाते, सैर करने जाते। और यह सब 'बेवस' जी की अध्यक्षता में होता। एक बार 'बेवस' जी ने पूरे सिन्ध प्रान्त के 'बालकनि जी वारी' के सदस्यो को लरकाना (लाडकाणा) मे आमन्त्रित किया। पूरे प्रदेश से करीब साठ बच्चों के ठहरने, खाने, घूमने आदि की व्यवस्था की और उन बाल हृदयों को सिन्धु सभ्यता से परिचित कराने के लिए बसो का प्रबन्ध कर मोहन जोदडो (मुअनि

1. सूरज हड़प करे थो सारा,
   दीह दिठे कीअं निकिरनि तारा,
   अहि थघी तरनि जी रात,
   टमक टमक तारेली रात॥

जो दड़ो) की सैर कराई। उनकी कविता कोरी कल्पना की उड़ान नहीं थी, उसका जन्म बच्चों के बीच में होता और देखते-देखते वह बच्चों के नन्हे-मुन्ने होठों पर थिरकने लगती।

'कागज़ की नैया' को लेकर हर भाषा के बाल-साहित्य में कविताओं का सृजन हुआ है। सिन्धु नदी एक विशाल नदी थी जिसके जल-प्रवाह का सही अनुमान केवल वही लगा सकते हैं जिन्होंने ब्रह्मपुत्र को देखा है। हर तीसरे-चौथे वर्ष सिन्ध के कई गांव बाढ़ की चपेट में आते और लोग पलायन करने लगते। सिन्धियों के इष्टदेव वरुण देवता हैं क्योंकि वहाँ नदी भी थी तथा अरब सागर भी था। सारी अर्थ-व्यवस्था खेती तथा सदियों से चले आ रहे समुद्र पार व्यापार पर आधारित थी। अरब सागर में जहाज़ भी चलते, नावें भी चलती। नौकायन, तैरना व घुड़सवारी वहाँ की सभ्यता के प्रमुख अंग थे। बच्चे ऐसे वातावरण में नौकायन करते और घर आकर कागज़ की नावें तैराते। कवि ने अपनी कविता 'कागज़ की नैया' में नाव के तैराने का वर्णन तब किया है जब अतिवृष्टि से जलप्लावन हो गया और निचले भाग जलमग्न हो गए, बच्चों ने तब उन स्थानों पर कागज़ की नैया तैराई।

अरब सागर की विशाल पृष्ठभूमि को लेकर घरौंदा (वारी अ जो घर) कविता की रचना की है। दिन उगने से पूर्व बच्चे खेलने के लिये सागर के किनारे पहुँचे। वहाँ रेत के बहुत बड़े टीले थे। रेत के लड्डू बनाकर रेत के घर बना दिये। बच्चे आनन्द-विह्वल हो उठे। बच्चे को इस प्रकार हर्षातिरेक में कूदते-फाँदते देख सागर अपना सर ऊपर कर उमड़ पड़ा और बच्चों को चुनौती देकर कहा 'ऐ नादान बच्चो! मैं उद्वेलित तरंगोंवाला सागर हूँ, मेरी एक लहर से तुम्हारे घरौंदों का नामोनिशान नहीं रहेगा।'[1] कवि मूल रूप में दार्शनिक है, चिन्तनशील है, सूक्ष्मचेता है। घरौंदे को लेकर एक ओर उसने बच्चों के लिए सुन्दर कविता का सृजन किया तो अन्तिम चरणों में उसके अन्तर्मन का दार्शनिक जाग उठा है। चिरकाल से रेत के घरौंदों की क्षणभंगुरता सर्वविदित रही है जिसकी ओर कवि ने इंगित कर बच्चों की [illegible] [illegible] आनन्द की [illegible]

1. वारी अ जो घर, सद्दु परादो [illegible], पृष्ठ–164।

किया है। सागर का मानवीकरण कर उसके द्वारा कहलवाए गए शब्द इतने सार्थक और समीचीन हैं कि मानो कवि ने बिना कहे संसार की क्षणभंगुरता का पूरा पाठ प्रस्तुत कर दिया हो।

कवि की गद्य रचना 'इख़्लाकी वर्क़' (सदाचार के पृष्ठ) बाल-साहित्य की अमूल्य निधि है जिसके विषय में इससे पूर्व भी लिखा जा चुका है। इस पुस्तक मे जो भी निबन्ध लिखे गए हैं वे आकार मे छोटे पर बिहारी के दोहों की तरह मन के परदे पर गंभीर घाव करनेवाले हैं।

'बेवस' का बाल-साहित्य पद्य तथा गद्य दोनों में प्राप्त है। उनका बाल-साहित्य बाल-सुलभ विषयों को लेकर बच्चों के हाव-भाव व आकांक्षाओं के अनुरूप उतर आया है। उनके गद्य मे उपदेशात्मक वृत्ति विद्यमान है क्योंकि वे व्यवसाय से अध्यापक थे। उनके मन का आदर्शवादी अध्यापक बार-बार उनके कृतित्व पर छा जाने को प्रयत्नशील रहता है।

———

8

'बेवस' का अभिव्यक्ति पक्ष

मानव मन इस अनन्त बाह्यजगत को देख भाव-विभोर हो उठता है और जिस आनन्द की अनुभूति करता है उसे प्रकट करना चाहता है। इस प्रकटीकरण अथवा अभिव्यञ्जना की भावना से ही कला की उत्पत्ति होती है। प्रकृति के नानारूपों को निरख मानव हृदय भय, विस्मय, आह्लाद, विषाद, उन्माद, चिन्तन एवं सृजन की भावनाओं से आप्लावित हो जाता है तथा वह उस अनुभूति की निधि को सुरक्षित रख उसको प्रकट करता है। इस प्रकटीकरण अथवा अभिव्यञ्जना की प्रक्रिया में कवि कलाकार, दार्शनिक, मीमांसक अथवा विचारक के स्तर पर पहुंच जाता है।

एक फ्रांसीसी समालोचक के अनुसार "कला प्रकृति की अनजान में की गई विवेचना है। जो अपूर्ण है, कला उसी की पूर्ति है।" मैथिलीशरण गुप्त के अनुसार "अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही कला है।" एक वैज्ञानिक की दृष्टि में विश्लेषण की प्रधानता रहती है जबकि एक कलाकार की दृष्टि में सौन्दर्य के प्रत्यक्षीकरण की भावना रहती है।

जैसा कि मैंने 'प्रकृति-चित्रण' सम्बन्धी अध्याय में इंगित किया है कि मुस्लिम-बहुल प्रान्त सिन्ध में सिन्धी साहित्य पर फारसी काव्य का गहरा प्रभाव था। 'बेवस' के परवर्ती कवि अधिकतर रीतिकालीन कवियों की तरह लकीर के फकीर बनकर गुल-बुलबुल, मय-साकी, शमा-परवाना, नर्गिस-नसीम, आशिक-माशूक के चोचलों में ही व्यस्त थे। विषय-वस्तु की दृष्टि से काव्य-रचना परिपाटियों

और रीतियों के जाल में उलझी हुई थी। धन-सम्पन्न जमींदार अपनी बैठक के बन्द दरवाजों में काव्य-रचना करते और कविता शराब के दौर के साथ सिन्धी, हिन्दू और मुसलमान शायरों द्वारा उस रात्रि के रंगीन वातावरण में नाच-गाने के साथ पढ़ी जाती। अरबी-फारसी के शब्दों की भरमार होती और मुहावरे व पद-रचना विदेशी होते तथा कविता के चरण इल्म-उरुज की बोझिल बंदिश से परिपाटीपूर्ण होते। हिन्दी की 'समस्यापूर्ति' की तरह सिन्धी में भी सभी कवियों-शायरों को पहले से ही एक पंक्ति प्रेषित की जाती। उसी पंक्ति को दृष्टिगत करते हुए सभी रचनाकार अपनी रचनाएँ व कलाम पेश करते।

नवीन मोड़ :

'बेवस' सरस्वती-पुत्र थे। उन्हें काव्य-रचना का वरदान प्राप्त था। उन्होंने सिन्धी काव्य को भाषा, भाव, शैली, कला, विषय-वस्तु, प्रस्तुति आदि सभी पहलुओं की दृष्टि से नया मोड़ दिया। काव्य को पारम्परिक एवं रूढ़ पद्धतियों से हटाकर नवीन प्रयोगों की ओर ले आये। उनसे पूर्व सिन्धी साहित्य में अधिकतर भक्त लोग ही कवि की पदवी प्राप्त कर पाये हैं। वे रूढ़ार्थ में भक्त कवि नहीं थे यद्यपि आस्तिक और ईश्वर-प्रेमी थे। उन्हीं के शब्दों में उन्होंने मानव को 'किताबों की क़ैद' से मुक्त कराने का सफल प्रयास किया। इसी कारण उनकी शिष्य-परम्परा आज भी प्रवाहमान है जिसमें प्रोफेसर हरि 'दिलगीर', पद्मश्री प्रोफेसर राम पंजवाणी, पद्मश्री हुन्दराज 'दुखायल', प्रभु 'वफ़ा' आदि के नाम प्रमुख हैं।

सिन्धी साहित्य के प्रमुख लेखकों—मनू तोलाराम गिदवाणी, टहलराम आज़ाद तथा मनोहर वेदी ने 'बेवस' की आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से तुलना की है: भारतेन्दु ने "जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है, वह नर नहीं, नरपशु निरा और मृतक समान है—" कहकर भारत के अतीत के गौरव तथा प्राचीन संस्कृति की नवचेतना को जागृत किया। 'बेवस' ने भारतेन्दु के समान भारत की प्राचीन संस्कृति तथा सिन्धुघाटी सभ्यता को अपने काव्य में मुखरित कर देशवासियों में स्वाभिमान, स्वावलम्बन, तथा अतीत के गौरव के प्रति निष्ठा की भावना फूंकी।

भक्ति और दर्शन के धरातल पर उन्होंने शाह अब्दुल लतीफ (1689–1752 ई०), सचल सरमस्त (1739–1829 ई०) की प्रेममार्गी सूफी काव्य-धारा को सामी (स्वामी का अपभ्रंश, मूल नाम भाई चैनराय 1743–1850 ई०, 107 वर्ष की आयु), की ज्ञानमार्गी काव्यधारा से मिश्रित कर सूफी मत और वेदान्त मे सामंजस्य स्थापित किया। उन्होने जन-सेवा को ही श्रेष्ठ बताया। अपनी कविता 'फ़्क़ीअ दर बेनती' में उन्होने कहा है :

कचीअ ला कर असर पैदा असामें खैर ख्वाहीअ जो,
दुनिया में खल्क खिज़्म खा न भायूं बन्दगी बहतर।

(हे परमात्मा) बाल्यकाल से ही हमारे हृदय मे दूसरों के प्रति शुभ-चिन्तन के ऐसे संस्कार पैदा करो कि जन-सेवा को हम परमात्मा की भक्ति से बढ़कर मानें।

उनके काव्य मे कही छायावाद तो कही रहस्यवाद प्रतिबिम्बित होने लगता है। उनकी प्रकृति-चित्रण की कविताओं में मानवीय तथा ईश्वरीय भावों का आरोप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। किन्तु जिस प्रकार हिन्दी साहित्य मे छायावाद अधिक समय नही चल सका, उसी तरह कवि के कृतित्व के विकास-क्रम के तृतीय उत्थान मे छायावाद के साथ-साथ प्रगतिवाद के भी दर्शन होने लगते है।

उनकी कविताओं मे सर्वोदय की भावना के साथ प्रगतिवादी दृष्टि भी उभरती नजर आती है। उन्होने श्रमिक (पोढ़घत) साहूकार (साहूकार), मजदूरिन (मजदूरिण), हाय किसान (हाय हारी), सहकारी आन्दोलन (सहकारी हलचल), ग्राम-सुधार (गोठन जो सुधारो), स्वदेशी (स्वदेशी), देशी हस्तकला (हेसी हुनुर) आदि कविताओं की रचना कर प्रगतिवाद और सर्वोदय की भावनाओं को ही अभिव्यंजित किया है। इस दिशा में उनकी कविता गरीबों की झोपडी (ग़रीबन जी झूपड़ी) भाषा, भाव एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से सिन्धी साहित्य की अमूल्य निधि है। 'बेवस' ने धनवान को चुनौती देते हुए कहा है कि तुम्हारे दुशाले का लाल रंग दरिद्रों के रक्त से रंजित है, उसे "मुफ़्तखाऊ मालदार", जोंक की तरह खून चूसनेवाला रिश्वती, पत्थर दिल आदि की सजायें दी है। उनकी

कल्पना-शक्ति जहां एक ओर गरीबों की झोंपड़ी को अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से चित्रित करती है तो वहां दूसरी ओर वे हिमालय के हिमाच्छादित उत्तुंग शृङ्गों को अपनी तूलिका से चित्रित करना नहीं भूले हैं।

'बेवस' की कल्पना-शक्ति असाधारण तथा उनकी सूक्ष्मदर्शिता अद्वितीय है। उनकी वर्ण-योजना और शब्द-चित्र हिन्दी साहित्य के प्रसाद और पंत के समान कुशल चित्रकार जैसी कलाभिव्यक्ति के द्योतक हैं। इस विषय में नदी, बरसात आदि कविताओं में उनकी कल्पना की उर्वरा शक्ति के दिग्दर्शन होते हैं। राम-रहमान जैसे अत्यन्त ही पारम्परिक विषय को उन्होंने नवीन रीति से प्रस्तुत किया है। वे कहते हैं कि दो नयनों के होते हुए भी चीज एक ही दिखाई देती है, उसी तरह प्रत्येक धर्म के तह में एक ही निरन्तरता दृष्टिगोचर होती है। उनकी कल्पना-शक्ति देश-प्रेम से भी ऊपर उठकर विश्व-प्रेम का संदेश देती है। वे कहते हैं कि देशवासी से बढ़कर दुनिया-निवासी बनकर जीवनयापन करो—

देसवासीअ खां वदी दुनिया-निवासी थी गुज़ार ॥

(वदी दिल – विशाल हृदय)

वे उच्चकोटि के युगान्तरकारी साहित्यकार थे। जो कुछ लिखा वह उच्च स्तर का और उच्चकोटि का लिखा। नाटक लिखे तो वे मंचन योग्य तथा दर्शकों का मनोरंजन करने में पूर्णरूपेण सक्षम थे। निबन्ध लिखे तो वे संक्षिप्त, प्रभावशाली, तथा रत्न-मंजूषा की तरह छोटे और सुन्दर। उनकी कविताओं की श्रेष्ठता के रूप में सर्वप्रथम उनकी काव्य-पुस्तक 'फूलदानी' को, जिसमें की अन्य प्राचीन एवं अर्वाचीन कवियों की कविताओं का संकलन है, 1939 में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकार किया गया। उसके पश्चात् सन् 1943 में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'मीरी ग़ोर' को पाठ्य-पुस्तक के रूप में सिंध की राज्य सरकार ने मान्यता प्रदान की। उनसे पूर्व सिन्धी साहित्य में केवल फुटकर रूप में ही बाल-साहित्य उपलब्ध था। उन्होंने अपने शिष्य हरि "दिलगीर" के साथ 'मौजी गीत' पुस्तक के प्रकाशन से बाल-साहित्य के सृजन के नये युग का सूत्रपात किया। उनकी बहुमुखी प्रतिभा की ओर दृष्टिपात करते हुए पण्डित देवदत्त कुन्दाराम शर्मा ने

'कवि थी माला' में लिखा है—"उनके कला-पक्ष अथवा भाव-पक्ष के बारे मे इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उनकी कविता कोई ऐसी ढोल नही है, जिस पर गुजरनेवाले लोग डंके से चोट करते जाएँ, फिर उससे भले ही असुन्दर और बेढगी आवाज़ क्यो न निकले। उनका काव्य ऑरकेस्ट्रा के समान है, जिसमे सितार, बीन, शहनाई, मृदग आदि कई साजो का समावेश रहता है और जिसमे से सामंजस्यपूर्ण स्वर निनादित करने के लिए बहुत ही विज्ञ और चतुर कलाकार की आवश्यकता है।"

काव्य दृष्टि :

'बेवस' नवीन तथा पुरातन के दुराहे पर खड़े थे जहां एक ओर पुरातन परम्पराओ से आवेष्टित काव्य की रचना हो चुकी थी वहां दूसरी ओर भारत के औद्योगिक क्रांति मे पदार्पण के कारण नवीन मूल्यो और वर्गभेदो का प्रादुर्भाव हो रहा था। कवि ने पारम्परिक विषयो से, यथा—स्त्री, कुदरत, मुल्की प्यार आदि से अपनी लेखनी का प्रारम्भ किया तथा अपारम्परिक विषय यथा गरीबो की झोपड़ी, साहूकार, ग्राम-सुधार, हाय किसान, नवीनता आदि तक जाकर पहुंचे। प्राचीन संस्कृत साहित्यशास्त्र मे रस, अलकार, रीति, वक्रोक्ति और औचित्य छ. सम्प्रदाय माने गये हैं। यद्यपि सिन्धी साहित्यशास्त्र मे इस प्रकार के कोई विशिष्ट सम्प्रदाय नही माने गये हैं फिर भी कवि के काव्य मे इन समस्त सम्प्रदायो के प्रधान लक्षणो का सामंजस्य है। अगर और भी पैनी आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो कवि मूल रूप में रस-सम्प्रदाय के कवि थे। जिस प्रकार रीतिकाल में कुछ काव्यकार आचार्यों की श्रेणी मे आते हैं तथा अन्य कवियो की श्रेणी मे आते हैं, उस कसौटी पर परखने से 'बेवस' जी कवि एव आचार्य दोनो सम्प्रदायों के बीच मे सामजस्य स्थापित करनेवाले थे। विद्वान अध्यापक होने के नाते भाषा एवं व्याकरण की बारीकियो का उन्होने पूरा ध्यान दिया है। उनके दोनों—अनुभूति एवं कलापक्ष एक-दूसरे से बढ़कर हैं।

उन्होने "कला को कला के लिये" के सिद्धान्त को कभी स्वीकार नही किया। कला को उन्होंने जीवन के लिये माना। महात्मा गांधी के प्रभाव के कारण तथा अंग्रेजो के अत्याचार एवं क्षुब्ध भारतीयो की स्वतन्त्रता सग्राम के प्रति

उदासीनता को देखकर उन्होने कुछ सीमा तक कला के उपयोगितावाद को स्वीकार किया। अपने अध्यापक जीवन में उन्होने कई ऐसी रचनाओं का सृजन किया, जो विद्यार्थियो को सच्चरित्रता, अनुशासन एवं देश-प्रेम की ओर उन्मुख करती हैं। इन कविताओं के माध्यम से 'बेवस' की गुरु-शिष्य परम्परा भी कायम हुई। उन्होने अपने शिष्यों को काव्य-सृजन के लिए भी प्रेरणा दी और उन्हें यही कहा कि वही काव्य उत्तम है, जो हृदय को हर तरह से परिपक्व और संतुलित बनाये। अपनी कविता—जोत (ज्योति) में उन्होने इन्ही उद्गारों को मुखरित करते हुए कहा है :—

दिल्यूं सालिम थियन जंहि सां
सचेरो शेर सो 'बेवस'।
घुरे संसार हर साइत में
सालिम दिल सचारा थो॥

उनके काव्य मे तन्मयता, तीव्रानुभूति तथा अनन्य साधना के दर्शन होते हैं। उनका दृष्टिकोण काव्य के हर पहलू और विधा की ओर पूरी गंभीरता और गहनता के साथ व्याप्त रहा है। काव्य के भाव को पूरी तरह से विकसित कर एक-एक शब्द, एक-एक तुक तथा एक-एक चरण में पूरा सामंजस्य स्थापित कर, कवि ने पाठक को रसानुभूति की ओर अग्रसर किया है। वास्तव मे वे स्वयं काव्यमय बन गये थे और एक बार तो उन्होने स्वयं ही अपनी कविता 'दिल घुरयो जाहिद थ्यां' (हृदय ने कहा कि परहेजगार बनूं अर्थात् पण्डित या मौलवी बनूं)

आहि हरहिक लफ्ज़ अन्दर कीमती रत जो फुड़ो,
केरू चवन्दो शेर 'बेवस' शाख़ अंगूरी न थी॥

मेरे काव्य के एक-एक शब्द में मेरे बहुमूल्य खून के कतरे हैं। कौन कहेगा कि मैंने अपने काव्य को अंगूर की बेल की तरह खून से नही सीचा है। अगूर उपजानेवालो को यह विदित है कि अंगूर की बेल की उर्वरा शक्ति बढाने के लिये खाद के साथ उसमें खून भी डाला जाता है। यह खून अक्सर बकरो के जिबा करनेवाले कसाइयो से प्राप्त किया जाता है। वस्तुत 'बेवस' ने काव्य को अपना खून देकर ही सीचा था।

काव्य में उसने भाव पक्ष को ही प्रधानता दी तथा छंद व अलंकारों को उनकी परछाई की संज्ञा दी। उन्होंने काव्य में छंद की बेड़ियों को भी नकारने का परामर्श दिया। कहीं-कहीं उन्होंने भाव को भंग होने से बचाने के लिए छंद-भंग को स्वीकार किया है। एक युगान्तरकारी व लब्ध-प्रतिष्ठ कवि होते हुए भी उन्होंने अपने पूरे कार्य का श्रेय सदैव परमात्मा को ही दिया है। उन्होंने अपनी कविता में कहा है कि मैं कैसे लिखूं, अल्पज्ञानी हूं, इस पहेली को तुम ही बुझा सकते हो कि मैं क्या लिखूं। मैं अपनी बांसुरी का वादन तब पूरा कर सकूंगा जब तुम मेरे गालों को फुलाओगे। मेरा मार्ग-दर्शन करोगे, तभी मैं पैदल चलकर पहुंच पाऊंगा। हे दयालु! तुम ही मुझ बेवस व कमजोर के बल हो। सिन्धी के प्रसिद्ध लेखक बलदेव गाजरा ने कहा है कि 'बेवस' में अंग्रेजी कवि कीट्स जैसा भाव-सौष्ठव, शैली जैसा आशावाद व सन्तोष, वर्ड्सवर्थ जैसा प्रकृति-चित्रण तथा ब्राउनिंग जैसी दार्शनिकता है। 'बेवस' लज्जाशील तथा विनम्र प्रकृति के थे, महान कवि होते हुए भी अपनी कविता "नेठ" (आखिर) में उन्होंने कहा है कि मेरा काव्य हवा में मक्खन की मंजिल बनाने के बराबर है और अपनी स्थिति की तुलना उन्होंने एक टांगवाली चींटी से करते हुए कहा है कि भला पंगु चींटी आकाश को कैसे नाप सकती है—

> शेर 'बेवस' मे हवा ते
> मूं मखण - माड़ी अदी,
>
> कीअं सघे उभ खे कछे
> हिक टंग माकोड़ी जदी॥

अपने आपको पंगु चींटी घोषित करने के बाद 'बेवस' ने अपनी कविता "गुल" (फूल) में फूल की शोभा, उसके प्रस्फुटन आदि का अत्यन्त ही सुन्दर और सशक्त वर्णन करने के बाद अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हुए कविता के अन्तिम छंद में कवि ने कहा है कि— मेरा दृढ़ विचार था कि फूल की वास्तविकता और सुन्दरता को अपनी कविता में प्रस्तुत करूँ। किन्तु 'बेवस' तुच्छ व्यक्ति है, वह फूल की मौलिक सुन्दरता और वास्तविकता को काव्य में मुखरित नहीं कर सका।

हो घणो ख्याल मगर
कीन खुली कीन सुनी,
शेर मे 'बेवस' नाकिस खां
हकीकत गुल जी ।

'बेवस' ने अपने आपको नाकिस (अपूर्ण) ही कहा है ।

'बेवस' की भाषा

जहां हिन्दी साहित्य में काव्य-सृजन प्रबन्ध, खण्ड, चम्पू और मुक्तक के रूप में हुआ है वहां सिन्धी साहित्य मे फारसी काव्य-पद्धति के अनुसार दीवान, कुलयात तथा फुटकर रूप में रचनाएं लिखी जाती रही हैं । दीवान में सिन्धी वर्णमाला के-अल्फ, बे, बे़ भे, ते, थे आदि वर्णों को लेकर छन्दों का प्रारम्भ किया जाता था । इस प्रकार की काव्य-रचना मे कई बार रदीफ (तुक) को जोडने के लिये आवश्यक व अनुपयुक्त शब्दों को तुक के साथ तुक मिलाने के लिये रखा जाता था, जिससे कविता अन्त करण की अनुभूति की अभिव्यंजना का वाहन न बनकर केवल शब्दजाल बनकर रह जाती थी । ऐसे वातावरण मे 'बेवस' ने एक नये युग का सूत्रपात किया । उन्होने भाषा, भाव, छन्द, रस, शब्द-रचना, प्रकृति-चित्रण तथा विषय-वस्तु में आद्योपान्त परिवर्तन किया । जैसा कि मैंने इससे पूर्व लिखा है कि 'बेवस' के कृतित्व के विकास-क्रम के प्रथम चरण मे उनके काव्य मे अरबी, फारसी के शब्दों व प्रसगो की प्रचुरता है, उनकी प्रारम्भिक रचना "सामूंडी सिपू" (समुद्र की सीपियाँ—प्रकाशन सन् 1929) यद्यपि विषय-वस्तु की दृष्टि अत्यन्त ही मौलिक व अद्वितीय है फिर भी उसकी कई कविताओ मे भाषा, मुहावरों, प्रकरणो व प्रस्तुति मे अरबी, फारसी के काव्य का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । भाषा व शब्द-चयन मे उन्होंने दामगृह (जाल-घर, महाजाल), वहदत (एकत्व, अद्वैत), कसरत (अनेकत्व, सर्ववाद), शम्स (सूर्य) कमर (चन्द्र), तुख़्म (बीज), शजर (वृक्ष), तोमान (ठाठ-बाट), इफ़शान (बरसना, छिड़कना), यजदान (परमात्मा, खुदा), ज़ाहिद (परहेज करनेवाला—पण्डित, मौलवी) आदि शब्दो का कई बार प्रयोग किया है ।

'बेवस' गीता का भी अध्ययन करते थे। यह अध्ययन संभवतः उन्होंने बाद मे शुरू किया जिस कारण उनकी बाद की रचनाओं मे हिन्दी और संस्कृत के शब्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ है। इस प्रकार के शब्द है—परमानन्द, स्वतः, सत्ता, सागर, पराधीनता, अलौकिक, अजन्मा अगोचर, गगन-मण्डल, सुरत, निरत, छल-छिद्र, अखण्ड ज्योति आदि। बेवस गीताञ्जली में उन्होंने अरबी, फारसी तथा हिन्दी और संस्कृत के शब्दो का प्रयोग बहुतायत से किया है। कई स्थानों पर उन्होंने फारसी और संस्कृत को एक साथ समास-बद्ध भी किया है, जो अपने आप मे एक नया प्रयोग है, यथा 1. पाक-मन्दिर (पृष्ठ 6, सदु पड़ाडो सागियो) 2. गुप्त-जज़्बान (पृष्ठ 46) 3. गुंबपुर (पृष्ठ 76) 4. बेहद-भण्डार (पृष्ठ 79) 5. तृष्णा-तावश (पृष्ठ 213) 6. महा-मौज (पृष्ठ 218)।

इस कारण कई आलोचको ने 'बेवस' की भाषा को खिचडी भाषा कहकर सम्बोधित किया है। वास्तव मे 'बेवस' की भाषा अत्यन्त साहित्यिक, रोचक तथा व्याकरण सम्मत थी। उनकी भाषा का खिचडीपन कबीर की भाषा जैसा नही था क्योंकि 'बेवस' प्रबुद्ध अध्यापक थे तथा फारसी, अरबी के विद्वान थे। साथ ही हिन्दू शास्त्रों व गीता के अध्ययन के कारण उनकी शब्दावली मे हिन्दी व संस्कृत के शब्द भी स्वतः आते गये। सिन्धु प्रदेश पर एक तरफ से अरबो और मुसलमानो के आक्रमण रहे तथा दूसरी ओर सिन्धु घाटी की प्राचीन सभ्यता का केन्द्र होने के नाते उनकी भाषा शैली तथा शब्दावली इस्लामी तथा भारतीय संस्कृतियो का आदर्श सामंजस्य उपस्थित करती है। कई स्थानो पर उन्होंने कबीर और गुरुनानक के भाषा और भावो को सिन्धी मे वैसा का वैसा रूपान्तरित किया है। अपनी कविता "दसहडो" (दशहरा – पुस्तक-सदु पडाडो सागियो, पृष्ठ 208) मे उन्होंने कबीर के एक भजन "क्या मांगू कुछ थिर न रहाई" की निम्नलिखित पक्तियां सिन्धी मे रूपान्तरित कर प्रस्तुत की हैं।

बेवस : हिक लख पुत्र सवा लख नाती,
तहिं रावण वट बच्यो न भाती।

कबीर : इक लख पूत सवा लख नाती,
जा रावण घर दिया न बाती।

भाषा तथा भाव की दृष्टि से 'बेवस' अति आधुनिक तथा सर्वथा मौलिक थे। उक्त कविता में केवल ये दो पंक्तियां ही समानता लिए हुए हैं शेष कविता दशहरे के पर्व पर राम की विजय तथा रावण की पराजय पर आधारित है। 'बेवस' के काव्य में कई ऐसे वाक्यों का सृजन हुआ है, जो बाद में अपने भाव-सौष्ठव और सुन्दर शब्द-योजना के कारण कहावतो तथा सूक्तियो के रूप में प्रयुक्त हुए है, यथा—

रहणीअ में नाहि आमिल, कहणीअ मे खूब कामिल (कथनी में तो खूब निपुण हूँ परन्तु मैं रहनी में उसे चरितार्थ नही करता)

(सदु परादो साग़ियो, पृष्ठ 64)

वहम जे तलवर आ॒दो, फहम जी घर ढाल खे (भ्रम, अज्ञान की तलवार के आगे विवेक की ढाल को आगे रखो)

(सदु परादो साग़ियो, पृष्ठ 78)

बेवस गीताञ्जली के कुछ भजनों की वाक्य-रचना व शब्द-चयन ऐसा है मानो हिन्दी भाषा की ही रचना हो। इस रचना मे केवल एकाध जगह ही सिन्धी भाषा के सम्बन्ध-सूचक शब्द हैं। राग पहाड़ी मे "श्री कृष्ण-स्तुति" इस प्रकार है :

जै मोहन मुकुन्द मुरारि
जै मुरलीधर गिरिधारी

1. जै जग-पति, जगत उजाला,
जै परमेश्वर प्रित (प्रीति) पाला,
जै गौउन जा रखपाला
जै व्रज-नाथ बनवारी।

2. जै सत चित आनन्द स्वामी
जै घट घट अन्तर्यामी,
जै अजर अगाध अनामी
जै केशव कुंज विहारी!

3. जै दुख-भंजन सुख दाता,
जै जगत-पिता, जग-माता,
जै विश्वनाथ विद्धाता,
जै सन्तन जा हितकारी ।

4. जै वाशदेव नन्द-नन्दन,
परमात्म देव, निरंजन,
जै मन मोहन मधसूदन,
सिर मुकुट पीतम्बरधारी ।

उसी प्रकार कृष्ण जन्मस्थान सम्बन्धी एक अन्य भजन नीचे इसी उद्देश्य से प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि भाषाविद् हिन्दी और सिन्धी भाषा का तुलनात्मक अध्ययन कर दोनों भाषाओं के सामीप्य के विषय में स्वयं ही निर्णय कर सकें। पाठको की सुविधा के लिए कोष्ठकों में सिन्धी शब्द का हिन्दी अर्थ प्रस्तुत किया गया है—

क्रिश्न (कृष्ण) जनम असथान (जन्मस्थान) ।
क्रिश्न (कृष्ण) जनम असथान—भारत—क्रिश्न जनम असथान ।।

(1)

मथुरा जायो (जन्मा) गोकल (गोकुल) पाल्यो (पला),
जमना (यमुना) कंठे (किनारे) जगत उजालो
श्याम सुन्दर भगवान—भारत—क्रिश्न जनम अस्थान ।।

(2)

देवकीअ जो (देवकी का) गर्भ संवारे
गोद यशोदा जी (की) सींगारे (सजाये)
राधिका (राधिका) जो (का) कान (कन्हैया)—भारत—क्रिश्न जनम असथान ।।

(3)

वृन्दावन जो (की) कुंज गल्युनि (गलियों) में

व्रज भूंइ (भूमि) जे (की) रंग रल्युनि मे (रंगरेलियों में)

मधुर मुरली तान—भारत—क्रिश्न जनम प्रसथान ॥

(4)

कंस रूप मे पाप निवारे

नएं सिरे संसार उजारे (नये सिरे से संसार में उजाला करे)

गीता जो (का) दे (दे) ज्ञान—भारत—क्रिश्न जनम प्रसथान ॥

(5)

गोपियुन ग्वालन गांयुन (गोपियों, ग्वालों, गायों का) साथी,

ऊंच (उच्च), नीच खे (को) जाणी (जानना) भाती (घर का सदस्य)

'बेवस' सर्व समान—भारत—क्रिश्न जनम-प्रसथान ॥

सिन्धी भाषा, साहित्य, व्याकरण, श्रुतिलेखन व सभ्यता के विकास और प्रगति के उद्देश्य को लेकर 28, 29 व 30 मार्च, 1941 को सिन्ध प्रान्त की राजधानी कराची मे सिन्धी साहित्य सम्मेलन का वृहत् स्तर पर आयोजन किया गया था जिसका सभापतित्व किशनचन्द 'बेवस' ने किया था। सम्मेलन में सिन्धी भाषा के हिन्दू तथा मुसलमान साहित्यकारों ने भाग लिया था। 'बेवस' का अठारह पृष्ठों का वह अध्यक्षीय भाषण आज भी सिन्धी सहित्य की अमूल्य निधि है जिसमें उन्होंने पारिभाषिक शब्दों के निर्माण करने; अदालतों के दस्तावेजों मे पुराने, रद्दी और नकारा शब्द-रचना मे परिवर्तन लाने; प्राचीन सिन्धी साहित्य के कलाम में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ का मानकीकरण करने; विविध व्यवसायो में प्रयुक्त ऐसे शब्दो को कोषबद्ध करने जो वर्तमान शब्द कोषों मे नही दर्शाये गये हैं; पाठ्य-पुस्तकों मे गलत जानकारी का तथा व्याकरण एवं भाषा तथा श्रुतिलेखन की त्रुटियो का सुधार करने तथा सिन्धी से सम्बन्धित भाषाओं—प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी और अरबी के शब्दों को ग्रहण करने आदि के सम्बन्ध में उन्होने अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये व कई महत्त्वपूर्ण मुद्दे उठाये।

अलंकार :

संस्कृत और हिन्दी साहित्य मे छन्दों व अलंकारों का जितना विस्तृत वर्गीकरण है उतना फारसी साहित्य मे नहीं है। 'बेवस' कलापक्ष एवं भावपक्ष दोनों ही दृष्टियों से अति उत्कृष्ट कवि थे। उनके काव्य में भाव-पक्ष की प्रधानता है तथा कला-पक्ष स्वाभाविक रीति से ही अपने आप उजागर होता गया है। उनके काव्य मे शब्दालंकारों का विधान अद्वितीय है। अनुप्रास की योजना मन्दाकिनी के प्रवाह के समान वेगशील, नैसर्गिक और मनोहारी है। प्रकरण के अनुसार उनका शब्द-विधान अनुप्रास-योजना में कहीं तो पहाड़ी नदी के समान प्रखरता और प्रचण्डता लिये हुए है और कही समतल भूमि पर बहनेवाली सिन्धु की जलधारा के समान विशालता और गहनता लिए हुए है। भक्तिकालीन कवि शाह अब्दुल लतीफ़ (1689–1752 ई०) के पश्चात् आधुनिक काल मे अनुप्रास-योजना में 'बेवस' का कोई सानी नही। "घणोम्र दर बेनती" (परमात्मा के द्वार पर विनती-पुस्तक 'शोरी शेर') कविता में एक या अनेक वर्णों का दो बार प्रयोग छेकानुप्रास अलंकार के रूप मे मिलता है, यथा—

> कचीअ खां कर असर पैदा असां में खैर ख्वाहीअ जो।
> दुनिया मे खल्क खिज़मत खां न आमूं बन्दगी बहतर ॥

वृत्यानुप्रास के उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

> घण्ड जी साबुण चकीअ सां घट लगी चमको घियो
> (नदी)
> सोभ्या सन्दम सभाई खीपे खणी लिकाई
> कोई करे भलाई दिए कैद मा रिहाई
> (मुखिडोअ जो बेताबी—कली की बेचैनी)

'बेवस' की प्रत्येक कविता में अनुप्रास के उदाहरण मिलते हैं। प्रकृति के वर्णन मे उन्होने प्रकृति-चित्रण के साथ-साथ अनुप्रास की ऐसी छटा प्रस्तुत की है मानो पाठक स्वयं प्रकृति के बीच मे बैठकर कवि के साथ उस मनोहारी रमणीयता का रसास्वादन कर रहा हो। इस प्रकार के उदाहरण नदी, बरसात, वाटिका और

बसंत, खुडलबीतो (खद्योत), तोतीग्र जी ग्राह (तोती की ग्राह), बहार, (वसंत) ग्रादि कविताग्रो में स्पष्ट है। शब्दालकारो मे "नदी" कविता की ग्रन्तिम पंक्तियो मे यमक का ग्रत्यन्त ही सुन्दर उदाहरण मिलता है जहां "वारी" शब्द का दो बार भिन्न-भिन्न ग्रर्थों में प्रयोग हुग्रा है। पहले "वारी" शब्द बालू रेत के रूप मे प्रयुक्त हुग्रा है तथा दूसरी बार यह शब्द थाली के रूप मे प्रयुक्त हुग्रा है, यथा—

वारी वि ग्राहि 'बेवस' कंहि जाइ सोन वारी

ग्रर्थालंकार मे रूपक, उत्प्रेक्षा, ग्रपह्नुति, दृष्टान्त, विभावना, विशेषोक्ति ग्रादि के कई उदाहरण मिलते हैं। ग्रपनी कविता "ग्रानन्द जी उछल" (ग्रानन्द की तरग) मे कवि ने एक सुन्दर तितली, जो ग्रपने रंग-बिरंगे पख खोलकर उड़ रही है, का वर्णन करते हुए कहा है कि प्रकाश रूपी समुद्र मे उडती हुई तितली के पख, तैरती हुई नाव के पाल के समान खुले हुए हैं। तितली ग्रपने पख रूपी पाल को खोल रही है ग्रौर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो सुन्दरता रूपी नगरी से सुन्दर उपहार ला रही हो—

सरह पटिया पोपट परन जा रोशनाई समुण्ड ते
खुश खंभन ते सूंहुपुर मां सूखिड़ी ग्राई खजी।

'जोत' (ज्योति) कविता में कवि ने निर्गुण ब्रह्म को सम्बोधित करते हुए कहा है कि हे ग्ररूपा (निर्गुण), तुम रूप के मंदिर मे प्रेम रूपी ग्रग्नि को प्रज्ज्वलित करते हो। उसमे स्वय ही ग्राहुति देने के लिए ग्रनेक हृदय रूपी मंदिर के द्वारो की रचना करते हो—

ग्ररूपा! रूप मन्दर मे जलाए प्रेम जी ग्रगिनी।
दियण लाइ ग्राप ग्राहूति, रची दिल जा दुग्रारा थो।

खुडखबीतो (खद्योत) कविता मे उन्होने खद्योत को ग्रंधकार रूपी नगर से ग्रानेवाला तथा प्रकाश रूपी नगर से ग्रानेवाला यायावर बताकर ग्रपह्नुति ग्रलंकार का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि क्या यह कोई ज्वालामुखी पर्वत से कोई लौ उडकर ग्राई है ग्रथवा यह हवारूपी हाथो द्वारा जलती हुई हवाई (पटाखा) चली ग्रा रही है।

ज्वालामुखी जबल तां आयो-उलो उदामी ।
या थी हले हवाई सड़न्दी हवा हथन मे ॥

बेरागी (वैरागी) कविता मे कलियुग को सम्बोधित करते हुए 'बेवस' कहते हैं कि इसे कलयुग कहें या करयुग कहें । यह संसार नही है यह एक चमत्कार है । यहाँ उपमेय संसार का निषेध कर उसके स्थान पर उपमान चमत्कार का आरोप किया गया है । इस प्रकार कवि के काव्य मे अपह्नुति के अनेक उदाहरण मिलते हैं ।

जिस प्रकार शब्दालंकारों मे अनुप्रास की प्रधानता है, उसी प्रकार अर्थालंकारो में उत्प्रेक्षा की प्रधानता है, कई स्थानों पर उन्होंने उत्प्रेक्षा के लिए जण (मानो) तथा गोया शब्दो का प्रयोग किया है जैसे "बाग एँ बहार" (वाटिका और वसन्त) कविता के द्वितीय छन्द में गोया शब्द का प्रयोग किया है, यथा—

गोया लका़म ब्यो लगी
कश्मीर जो हिते

(मानो काश्मीर के दिव्य दर्शन यहा दृष्टिगोचर हो रहे हों ।)

अपनी कविता गुलजार हयाती (सम्पन्न जीवन) मे कवि ने उदाहरण अलकार प्रस्तुत किया है कि उद्देश्य के बिना मनुष्य ऐसा ही है जैसे पतवार के बिना नाव (मूल पाठ—मंशा बिना इन्सान, त ओले बिना बेड़ी) ।

लक्षणामूलक अलंकारो मे मानवीकरण का जितना व्यापक और सशक्त प्रयोग 'बेवस ने' किया है उतना सिन्धी साहित्य मे पहले कभी नही हुआ । अपनी कविता 'हमदर्दी' में कवि कहते हैं कि रात की आख मे से आराम बिदाई ले गया । अपनी कविता बहार (वसन्त) मे कवि मुकुलो को मुस्कराते हुए बताकर कहते हैं कि पुष्पो ने अपने गले मे ओस रूपी मोतियो की मालाए पहन ली हैं । 'बाग एँ बहार' (वाटिका और वसन्त) में कवि पेड़ो, टहनियो और पत्तो मे मानवीय गुण आरोपित करते हुए कहते हैं कि पेड़ और पौधे चाव व प्रसन्नता के साथ एक-दूसरे को चूम रहे हैं, पत्ते तालियाँ बजा रहे हैं और वृक्ष अपने डठल और टहनियो से डांडिया नृत्य कर रहे हैं ।

'बेवस' के काव्य मे केवल स्वाभाविक रूप से ही काव्य का अलंकरण हुआ है। उन्होने कहीं भी काव्य मे अलंकारो को ठूंस कर अलंकृत करने का प्रयास नही किया है। जहाँ भी अलंकार प्रयुक्त हुए हैं वे 'बेवस' की भावनाओं को अधिक ही उजागर करते हैं और पाठक को उसके काव्य की तीव्र अनुभूति का रसास्वादन कराते हैं।

छन्द :

'बेवस' पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना और सगीत का अत्यधिक प्रभाव था, इस कारण उनकी समस्त रचनाएं अत्यन्त ही सुन्दर रीति से संगीतबद्ध हो चुकी हैं और जहां-जहां सिन्धी समुदाय है, वहा गाई और गुनगुनाई जाती रही हैं। उन्होने अधिकतर फारसी के वजनो का प्रयोग किया है तथा 'बेवस' गीतांजली मे उन्होने भारतीय सगीत की राग-रागिनियों का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होने हिन्दी के दोहों और सोरठो के मिश्रण से निर्मित बैत और वाई नामक छन्दों का प्रयोग किया है। फारसी के ईल्म, उरुज् (पिंगल शास्त्र) के निम्न वजनो का 'बेवस' ने अपने काव्य में प्रयोग किया है :—

फाइलातन फाइलातन फाइलातन फाइलन
फऊलन फऊलन फऊलन फऊ
मुफाइलीन मुफाइलीन मुफाइलीन मुफाइलीन
मफऊल फाइलातन, मफऊल फाइलातन
फाइलातन फइलातन फइलातन फइलन
मफ़ऊल फाइलात मुफाइल फाइलन

उन्होने अपने खण्ड-काव्य "गुरुनानक जीवन कविता" मे 'फऊलन फऊलन फऊलन फऊ' वजन का प्रयोग किया है। अपने इस खण्ड-काव्य के आरम्भिक छन्दो को निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया है :—

हिन्दू धर्म जी थी जदहिं दुर्गती
लथो सिज, बरी घार घर घर बती,
मथां हाकिमन जी मुसीबत मती,
लगा धर्मी-जन कष्ट काटण अती'
सचुखण्ड पहुति सन्दन सर्द आह,
गुरुदेव नानक सचो पातशाह ॥

इसके अतिरिक्त 'शेर बेवस' की प्रेम-पत्र कविता में भी इसी छंद का प्रयोग हुआ है। कविता में शकुन्तला राजा दुष्यन्त को पत्र लिख रही है। 'प्रेम-पत्र कविता के निम्नलिखित छन्द के प्रवाह ने भाषा और भावों को जोड़कर पाठक को विलक्षण आनन्द का रसास्वादन कराया है—

लगी नीहं जो जंहिखे नाविक तिखी,
वते दील में जा दुखन सां दुखी,
न जा सोज़ सांडण अन्दर में सिखी,
नकी हाल जो सघे थी लिखी,
करे सान्त सा जे, त जीउ थो जले,
कुछे थी, कुढण खा लजा थी रूले ॥

कवि ने अपनी कविता 'विश्वामित्र जो पश्चाताप' (विश्वामित्र का पश्चाताप) में भी इसी छंद का अत्यन्त ही सफल प्रयोग किया है। उक्त छंद में वजन की परिपक्वता के साथ तुक और लय को भी अत्यन्त ही प्रभावशाली रीति से प्रस्तुत किया है, जैसे लिखी, दुखी, सिखी, लिखो आदि शब्दों से प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त शीरीं शेर की कई कविताओं में इस छन्द का सफल प्रयोग हुआ है।

सिन्धी साहित्य में 'बेवस' की कुछ काव्य-रचनाएं अत्यन्त ही ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं। ये कविताएं भाषा, भाव, प्रस्तुति के कारण साहित्य में अद्वितीय स्थान प्राप्त कर चुकी हैं। इनमें से एक कविता "गरीबन जी झुपड़ी" (गरीबों की झोपड़ी) में कवि ने 'मफ़ऊल फाइलात....'वज़न का प्रयोग किया है—

जा माहि आडदाट न वर्ष बवाय र्या,
पौन्दी न उ़र वाऱ खा सिर्जीअ ते कनाव या,
ओनो न वंहिजे माहि कों जांधे वंदाप या,
हल्की रहे ता हिंयांअ में मदनी मंनाप या,
जंहि में गुजर कर न सघामर कंदि विड़ो
मना ! करे न काल गरीबन जी झुपड़ी"

'बेवस' की प्रसिद्ध पुस्तक बेवस 'गीतांजली में उनके विविध प्रकार के गीतो और काव्य-रचनाओ का संकलन किया गया है। ये गीत शास्त्रीय सगीत के सिद्धान्तो और राग-रागिनियो पर आधारित हैं। इनमे किसी एक भाव को लेकर उसे विकसित किया गया है। ये गीत एकल, युगल तथा सामूहिक गाने योग्य हैं। कुछ गीत स्वतत्रता संग्राम मे जुलूसो मे गाने के लिए रचे गये थे तो कुछ गीत विभिन्न हिन्दू पर्वों पर गाने योग्य है। 'कई राम मूं ते महिरबानी' (राम ने मेरे ऊपर मेहरबानी (कृपा) की स्वर जोग मे, 'समझ सची तूं धाई' (सच्ची समझ को तुम धारण करो) राग प्रभाती में, 'राम-नाम' राग भैरवी मे, 'सभ फना आखर फना' (सभी नाशवान आखिर नाशवान) राग कानरो मे, 'लकापतीअ जी हार' (लकापति की हार) राग प्रभाती मे रची गई हैं। राग प्रभाती मे 'जन्माष्टमी' शीर्षक कविता की प्रथम पक्तिया इस प्रकार हैं—

आनन्द नन्द-भवन मे आहे, किशन कनैयो आयो आहि,
हली डिसो रे नन्द किशोरी मात यशोदा जायो आहि।
गगन मडल में गुल-फुल वरस्या, आनन्द इन्द्र लगायो आहि
पल पल में छा छननन छम छम, कुदरत रंग रचायो आहि।

शास्त्रीय राग-रागनियो के प्रयोग के समय 'बेवस' की भाषा हिन्दी और सस्कृतनिष्ठ हो जाती थी जैसे कि ऊपर गीत से स्पष्ट है। इसी प्रकार फारसी के छन्दो का इस्तेमाल करते हुए फारसी और अरबी शब्दो की प्रचुरता पाई जाती है। अपनी कविता 'दिल घुर्‌यो ज़ाहिद थिया' (दिल ने चाहा कि परहेजगार बनूं) में कवि ने कई फारसी शब्दों का प्रयोग किया है—यथा जाहिद, मस्तूरी, शरीयत, मोहताज, मइजूरी, मुबारक, जम्बूरी, शब आदि। कविता के प्रथम चरण मे कवि कह रहे है कि :—

दिल घुर्‌यो ज़ाहिद थियां पर मुखा मस्तूरी न थी।
बिरह दग उल्टो बतायो, हाज दस्तूरी न थी॥

अर्थात् मेरे मन की इच्छा है कि मै परहेजगार बनूं अर्थात् मुल्ला या ब्राह्मण बनूं पर इस प्रकार अपने अवगुणों पर पर्दा (मस्तूरी) डालना नही चाहता। मुझे प्रेम ने तो इसके विपरीत मार्ग बताया है, मुझ से प्रेम मे अपना तो नित्य प्रति का काम (दस्तूरी हाज़) भी नही होता।

फारसी वजन फाइलातन फइलातन फइलातन फइलन में 'बेवस' ने अपनी कई कविताएँ छन्दबद्ध की हैं जिनमें प्रमुख हैं —'हाय हारी, जाति झगडो, अशान्ति, ताजमहल, हुस्न आदि। कई फारसी वज़नों को 'बेवस' ने परिष्कृत कर उनका सिन्धीकरण किया जैसे 'मफऊल फाइलतन' वज़न में उन्होंने अपनी कविताएँ मुलड़ीअ जो बेताबी (कली की बेचैनी), हिमालय आदि कविताए प्रस्तुत की।

हिन्दी के दोहा और सोरठा के संगम से उन्होंने सिन्धी छन्द "बैत" व "दोहीअड़ा" का प्रयोग अपनी पुस्तक 'शोरोशेर' की कई कविताओं मे किया है, यथा "वतन" (स्वदेश), अङु.रयूं एँ मुण्डो (अंगुलिया और अंगूठी), पखी एँ पिञड़ों (पक्षी और पिंजड़ा) आदि। 'बेवस' के बैत अत्यन्त ही हृदयस्पर्शी, कल्पना की उड़ान व भावों की गहनता से भरे हुए है। 'बेवस' से पूर्व सिन्धी साहित्य के भक्तिकालीन कवियो शाह अब्दुल लतीफ (1689–1752 ई.), सचल (1739–1829 ई.) तथा सामी (1743 1850 ई.) ने बैत तथा दोहीअड़ा छन्दों का व्यापक और सफल प्रयोग किया था। 'बेवस' द्वारा रचित भजन 'बेवस गीतांजली' में संकलित हैं तथा उनके साथ कई गीत भी हैं। बाल साहित्य के अन्तर्गत उनके गीत "मौजी गीत" नामक पुस्तक मे सकलित हैं। उनके जीवन-काल मे ही उनके सभी गीत बाल-जगत मे ख्याति प्राप्त कर चुके थे। इस पुस्तक से मैंने उनके कुछ गीतों का सिन्धी रूपान्तर प्रस्तुत किया है। उनके गीत "फुड़त छोकर" (फुर्तीला मुन्ना) की कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत हैं :—

छोकर नण्ढिड़ो छोकर नण्ढिड़ो, निकितो घर खां तकिड़ो तकिड़ो।
हथ सन्दस में छड़ी कारी, टिण्ड ते टोपी खादीअ वारी।
घुमन्दो आयो घुमन्दो आयो, नदीअ किनारे पाणु पुजायो।
उतें डिठाईं बाघु हिकिड़ो, पुठ्यां सन्दस थे आयो तकिड़ो।

'बेवस' ने कविता के भाव को ही प्रधानता दी। पिंगलशास्त्र के सिद्धान्तो को उतना ही महत्त्व दिया जितना आवश्यक था। वे युगान्तरकारी कवि थे और सदैव छन्द के बन्धन को मानते हुए भी उनकी बेड़ियो मे बधे हुए नहीं रहे। अपनी कविता 'इश्क़ जो अोयड दिसी' (पुस्तक—सदु परादो सागियो—पृष्ठ 68) कविता मे उन्होंने अत्यन्त ही साहस के साथ पुरातन पीढ़ी के कवियो को चुनौती देते हुए कहा है कि काव्य मे मानसिक व्यायाम जैसी नोच-खोंच नहीं होनी चाहिए, काव्य मे हृदय

के भावों का विस्तार और उत्कीर्णन होना चाहिये। दोनों में इतना ही अन्तर है जितना कागज के फूलो मे और गुलाब में। पदमश्री हुन्दराज 'दुखायल' ने इस सम्बन्ध में 'बेवस' के जीवन का एक अत्यन्त ही सुन्दर संस्मरण प्रस्तुत किया है। 'दखायल' जी कहते हैं कि एक बार मैंने छन्दो एव पिंगलशास्त्र के विषय में 'बेवस' जी से प्रश्न किया तो उन्होंने मुझे जलती हुई बत्ती के सामने खड़ा कर दिया और पूछा "बताओ कि तुम्हारी परछाईं जमीन पर कहा है ?" मैंने कहा "वह तो मेरे पीछे है।" फिर कहा "थोड़ा चलो और देखो कि वह परछाईं कहां जा रही है?" मैंने तुरंत उन्हें बताया कि वह तो मेरे पीछे आ रही है।" फिर बत्ती को पीठ देकर मुझे कहा, दौड़ लगाओ। मैंने देखा कि परछाईं आगे है और मैं उसके पीछे दौड़ रहा हूँ। तब उन्होंने समझाया कि अगर कविता करने का शौक है तो पिंगलशास्त्र अपने आप परछाईं की तरह तुम्हारे पीछे दौड़ता आयेगा। अगर तुमने काव्य-रचना के शौक को पीठ दे दी और पिंगलशास्त्र के पीछे दौड़ते रहे तो परछाईं के पीछे दौड़ने के अलावा कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। आगे चलकर उन्होंने कहा कि सरस्वती की कृपा अपने आप ही तुम पर होती रहेगी।



परमात्मा के द्वार पर विनती-1

[कवि ने पारम्परिक पद्धति के अनुसार अपनी प्रत्येक कृति मंगलाचरण से प्रारम्भ की है। 'शोरीं शेर' पुस्तक (1943 ई०) की प्रथम दो कवितायें ('कुदरत वारा'— स्रष्टा और धणीअ दर वेनती - परमात्मा के द्वार पर विनती) परमात्मा की प्रशस्ति में लिखी गई हैं। कवि की ये दोनों कवितायें इतनी लोक-प्रिय थीं कि सिन्ध में कई पाठशालाओं में इन कविताओं को प्रार्थना के रूप में प्रतिदिन सस्वर गाया जाता था। उनमें से एक कविता का हिन्दी रूपान्तरण यहाँ प्रस्तुत है।]

हे दयालु, तुम हमारी दशा पर सदैव दया करो। हे *कल्याणकारी* ! अपनी अनुकम्पा से हमारी रिक्त झोली को भरो।

अगर हम भ्रमित है तो अपने कला-कौशल से हमारा मार्ग प्रशस्त करो। हे स्वामी, तुम हमारा यह नाजुक चरण सद्मार्ग की ओर बढ़ाओ।–1

हे स्वामी ! अच्छाई और बुराई को परखने के लिए तुम हमें विवेकशीलता प्रदान करो, हम सदा हितकारी और कल्याणकारी रीतियों का अनुसरण करें।–2

जो विद्याध्ययन व पठन करें उन्हें हृदयगम भी करें और शिक्षा को आचरण में रूपान्तरित करें, नये सिरे से शिष्टाचार और साहित्य के लिए लगाव उत्पन्न हो।–3

बाल्यकाल से ही हमारे हृदय में दूसरों के प्रति शुभ-चिन्तन के संस्कार पैदा करो कि जन-सेवा को हम परमात्मा की भक्ति से बढ़कर मानें।–4

हे जग के दाता ! हमें जो चाहिये तुम से ही मांगें। तुम्हारे भण्डार हमेशा से ही भरे हुए हैं, तुम दाता, न्यायकारी और सर्वसत्ता-सम्पन्न हो।–5

मूल शीर्षक 'धणीअ दर वेनती'

प्रेम-गीत–2

[इस कविता में कवि ने प्रेम की महिमा का वर्णन किया है और जीवात्मा को परमात्मा से मिलने के लिए प्रेम-नगर की ओर प्रस्थान करने के लिए आहूत किया है। कवि प्रेम को जीवन की ज्योति मानता है और उसी से परमानन्द की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता हुआ देखता है। कवि मूल रूप में भक्त है और उसकी कृतियों का प्रधान स्वर आध्यात्मिकता है।]

चल प्रेमी प्रेमनगर मे।

प्रेमनगर अत्यन्त सुन्दर मन्दिर है, तुम उसे दृष्टिगत करो। प्रेमनगर के घर-घर मे प्रेम की ही महिमा है और प्रेम की ही पूजा है। प्रियतम से नेह लगाकर मैंने प्रियतम (परमात्मा) को अपने घर मे ही पा लिया है। चल प्रेमी प्रेमनगर में।–1

प्रेम की चढाई अति कठिन है, फिर भी उठो और चलने की तैयारी करो। प्रेम का प्रताप अनोखा है और प्रेम की महिमा न्यारी है। प्रेम के मार्ग पर प्राणोत्सर्ग करके ही हम प्रभु के धाम पहुंचेंगे। चल प्रेमी प्रेमनगर मे।–2

प्रेम के सागर में से मैंने एक मोती ढूंढ निकाला है। प्रेम की रचना अनोखी है, प्रेम ही जीवन की ज्योति है, तुम अपने प्रियतम (परमात्मा) से प्रेम-पाश मे आबद्ध होकर निर्जन वन मे भी आनन्द प्राप्त करो। चल प्रेमी प्रेमनगर में।–3

मूल शीर्षक 'प्रेम-गीत'

गुलामी–3

[इस कविता का रचनाकाल उस समय का है जब भारत पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। हमारे देशवासी स्वतन्त्रता-संग्राम के प्रति उदासीन हो गये थे और गांधीजी ने अफ्रीका से लौटकर स्वाधीनता संग्राम की भेरी को निनादित किया था। कवि ने देशवासियों की प्रारम्भिक उदासीनता से खिन्न होकर पिंजरे में बन्द पक्षी के रूप में गुलाम भारतवासियों को सम्बोधित करते हुए उन्हें पिंजरे के सींखचों से बाहर निकलकर स्वाधीनता के स्वच्छन्द आकाश में विचरण करने का परामर्श दिया है। कवि ने कविता के स्पष्टीकरण हेतु अपनी ओर से कविता के अंत में 'टीका' भी प्रस्तुत की है।]

परामर्श :—

पिंजरे का द्वारा खुल गया और वाणी प्रतिध्वनित हुई–हे तोते! उड़ना चाहो तो उड़ सकते हो। तुम इसी समय हरी-भरी टहनियों पर झूलना चाहो तो झूल सकते हो, अपने बिछुड़े हुए सजातीय साथियों और परिजनों से सस्नेह आमोद-प्रमोद मे सम्मिलित हो सकते हो। हे तोते! तुम मूढ मत बनो, ऐसा अवसर फिर कभी नहीं मिलने का।

अवसर का लाभ प्राप्त कर पंख पसार कर उडान भरो, पखो के होते हुए भी पराधीन और असहाय मत बनो। हे तोते! तुम आकाश मे उड़नेवाले पक्षी हो, इसलिए तुम सदैव के लिए घुटन भरे जीवन के इस पिंजरे में बन्द रहकर मत मरो। पिंजरे की जाली मे बन्द रहकर फ़रियाद का पाठ पढना तुम्हारे लिए शोभनीय नहीं है।

हे तोते! तुम्हारे लिए पिंजरे का द्वार खुल गया है, अगर पखो पर तुमने उडान भरी तो यह तुम्हारा अति साहसिक कार्य होगा। आजीवन वही मुक्त रहेगा जो इस समय अवसर का लाभ उठाएगा। ज्यो ही तुमने पिंजरे को छोड़कर अपना स्थान बदला त्यों ही तुम्हारी स्वच्छन्दता आकाश तक होगी।

उत्तर :—

पिंजरे रूपी कैद से ही मेरी आत्मा जुड़ी हुई है क्योंकि इस कैद की बेड़िया मेरी काया से मजबूती से जकड़ी हुई हैं, जिनसे छुड़ाने पर मैं लहू-लुहान हो जाता हू, क्योंकि वे बेड़िया मेरे मास से बुरी तरह से जकड़ी हुई हैं और जंजीरें सास और शरीर के साथ बध चुकी है।

अत: मैं अपने उस स्थान—पिंजरे रूपी कैद को कैसे छोड़ूं, जहां मेरा जन्म हुआ है और सारी आयु बीत गई है। बचपन से लालन-पालन पिंजरे मे हुआ है और मेरी आत्मा के तार इसी पिंजरे से जुड़ गये हैं। इस फौलादी पिंजरे में सुरक्षा व देख-भाल करने की अद्वितीय शक्ति है, इसलिए मस्ती से निर्भय होकर इसके सहारे पड़ा हुआ हूँ।

पिंजरे का स्वामी अत्यन्त उग्र और अत्याचारी है, उसके बाण अचूक हैं और वे ऊचे आकाश मे उड़कर सशक्त होने का प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं, अतः कोई अनजान ही ऐसे मालिक से शत्रुता का अवसर देगा, मैं तो निरीह पक्षी हूं।

इसके अतिरिक्त मेरे पावों मे अत्यन्त कोमल पैजनियां पड़ी हुई हैं गले मे मौली (डोरा) बन्धी हुई है, मेरे आतिथ्य के लिए मेरा मालिक नित्य नए और मधुर फल भेजता है। यहा जीवन-क्रम निश्चिन्त और आसान है। अतः इस प्यारे पिंजरे मे मैं अनूठे आनन्द का अनुभव करता हू।

टीका :—

पिंजरे और उसके स्वामी ने 'बेवस' (परवश) तोते की बात सुनी। तोते ने ही तो अपनी मुक्ति में अड़चन डाल रखी है।

'बेवस' कहते है कि जब तक एक बन्दी बन्दीगृह में है तब तक वह स्वाधीनता की डींग भी नहीं मार सकता।

मूल शीर्षक 'गुलामी'

नदी–4

[नदी अपनी आत्मकथा के रूप में अपने उद्गम से अन्त तक की यात्रा का वर्णन करती है। इस कविता का भावपक्ष तो अपने आपमें अनूठा है ही, इसकी ध्वन्यात्मक प्रस्तुति और अनुप्रास की छटा आधुनिक सिन्धी साहित्य में अद्वितीय है।

(1)

बादल बनकर कभी मैं आकाश में विचरण करती थी, शीत की प्रचुरता में शैल-शिखरों पर हिमाच्छादन के रूप मे मेरा पराभव हुआ, ग्रीष्म की तपन से मैं सर्पीली चाल से उपत्यकाओं में प्रवाहित हुई, फिर सघन पर्वतमालाओं के मध्य मेरा सघोष पदार्पण हुआ, पर्वतों से टकरा-टकराकर मैंने अपना सिर घिसा दिया और अन्ततः मैं समतल भूमि तक पहुच गई।

(2)

मैंने कही भी ठहरकर चैन की सास नही ली, उन्माद का अनुभव नहीं किया, सदा से मेरा जल आन्दोलित व आलोडित रहा है, मैं स्थिरता को मृत्यु समझकर सदैव गतिशील रही हूं, मैं प्रतिक्षण निचले भागो से बहती हूं क्योंकि मैं नदी बहुत विनम्र हूं। मेरे मन की एक प्रबल इच्छा है कि सागर से मेरा संगम हो और मैं अपने मूल उद्गम स्थान पर जाकर सांस लूं।

(3)

अगर मैं किसी क्षण मुदित मन से खेतों मे पदार्पण करती हूं तो धन-धान्य व हरियाली के भण्डार भर जाते हैं, वाटिकाओं में नाना प्रकार के रंगोंवाले फूलों की सृष्टि करती हूं, पृथ्वी के ऊपर मखमली तहवाले कालीन बिछाती हूं, मेरी एक-एक बून्द आभामय और सप्राण है, प्रत्येक जीव के रगों मे मेरे चिन्ह हैं।

(4)

मुझ में भंवरो की कर्कश ध्वनि है व लहरो की तरंग और उमडन है, मुझ में मत्स्य और कूर्मों के भण्डार भरे हैं, क्षुधातुर मगर और घड़ियाल हैं, किनारे की कच्ची भूमि के कण कोसों तक मुझ में आप्लावित होते हैं, अन्त मे 'बेवस' कहते हैं कहीं-कही ऐसी भी रेत है जिसमें सोने के कण भी हैं और आज भी मैं सत्य की नैया को मझधार से पार लगाती हूं।

मूल शीर्षक 'नदी'

सुख-दृष्टि—5

[कवि मूल रूप से आशावादी थे। इस कविता में उन्होंने आशा के सन्देश को प्रसारित करते हुए कहा है कि सदैव हम मुस्कराते रहेंगे, जीवन में कभी शिकायत नहीं करेंगे। जिस समय इस कविता की रचना की गई थी उस समय आणविक शक्ति के विकास से संसार अनभिज्ञ ही था, फिर भी भावीद्रष्टा ने लिखा है कि हम रेडियम की तकनीक से अन्तरिक्ष में उड़ान भरेंगे। कविता के अन्तिम छन्द में तत्कालीन 'हालावाद' का स्पर्श भी ढूँढ़ा जा सकता है।]

हमारी आँखों में आँसू होंगे फिर भी हम मुस्कराहट से भरी मुख-मुद्रा को याद करेंगे और इस सुखद संसार मे कभी भी फरियाद नहीं करेंगे।

दुख के बोझ से हम हृदय को खिन्न और मर्माहत नहीं होने देंगे और सत्य तथा ज्ञान को कभी भी मिथ्या मे नष्ट नही होने देंगे।—1

इस अप्सरा-लोक रूपी संसार ने हमारी इन्द्रियो को उत्तेजित किया है, फिर भी निष्पक्ष भाव से हम प्रत्येक वस्तु के प्रति धन्यवाद अर्पित करेंगे।—2

स्वार्थी नजर मे निकृष्टता भरी रहती है, हम निःस्वार्थ होकर अवरुद्ध मार्गों को उन्मुक्त करेंगे।—3

मुझे ऐसा कांटा नही सूझता जो बिना फूल के हो, पर ऐसे कई फूल हैं जो बिना कांटो के हैं। इस आशा को लेकर कि कांटों रूपी दुःख हमारे साथ इसलिए है क्योंकि हम फूल हैं, हम सदैव विपादपूर्ण हृदयो को आह्लादित करेंगे।—4

हम पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त कर, सुनियोजित संघर्ष कर अपने भाग्य को बदलेंगे, वीरान और विनष्ट का पुनर्निर्माण करेंगे ।–5

रेडियम (की तकनीक) से हम अन्तरिक्ष में पहुंचेंगे और नभ-मण्डल के ग्रहों मे घूमने के लिए नये आविष्कार करेंगे ।–6

पतझड़ में हम हरे रहेंगे और शरद्काल मे हंसते रहेंगे । इस उल्लासहीन जीवन में हम शमशाद (सदैव हरा और ऊंचा) के वृक्ष की तरह रहेगे ।–7

अन्धकार में छत पर चढ़कर तारों का अवलोकन करेंगे और अपनी आशाओ की नींव को प्रकाश पर प्रस्थापित करेंगे ।–8

इस द्वन्द्वपूर्ण जीवन मे जहां पारस्परिक तनाव के पंजे मार कर जगत रक्त-रंजित हो गया है, हम प्रेम के प्रसाद को पाने का उपदेश देंगे ।–9

जिस प्रकार वृद्धावस्था रूपी गुठली में बीज रूप मे यौवन छिपा हुआ है, उसी प्रकार एक जीवन के अन्त के उपरान्त नवजीवन का आरम्भ करेंगे ।–10

हे प्यारे ! किसी दिन तुम 'बेवस' के "जश्नखाने" (आमोद-गृह) में आ जाना, वहां हम मयपान कर गम की दुनिया को ध्वस्त करेंगे ।–11

मूल शीर्षक 'सुख दृष्टि'

अवगुण्ठन के पीछे–6

[कवि पर कवीन्द्र रवीन्द्र की गीतांजली का गहरा प्रभाव था जो प्रस्तुत कविता में परिलक्षित है। अध्यापक होने के कारण उन्होंने निर्गुण और सगुण के भेद को रेखागणित के सिद्धान्त से स्पष्ट किया है जो नितान्त मौलिक अभिव्यक्ति है।]

अवगुण्ठन के पीछे किसका दृश्य विद्यमान है? सोचकर बताओ। 'सुरत' के सम्मुख किसका दृश्य आ रहा है? सोचकर बताओ।–1

क्षण मे जो सैकडो मीलों से चित्रो और ध्वनियो को लाता है, उस विद्युत् मे किसकी सत्ता विद्यमान है? सोचकर बताओ।–2

कई अणु वाछित मात्रा मे मिलकर कैसे एक नवीन पदार्थ की रचना करते हैं। जड़ के अन्दर जागृति का कैसे प्रादुर्भाव होता है? सोच कर बताओ।–3

पत्थरो की खान के गर्भ मे किसने हीरे और रत्नो को प्रस्थापित किया है? वर्षा की बून्द से किसने एक धवल मोती की सृष्टि की है? सोच कर बताओ।–4

खाद, जमीन, जलवायु और प्रकाश के समान समान होते हुए भी पुष्पो ने पृथक्-पृथक् वर्ण और गन्ध का कैसे वरण किया है? सोचकर बताओ।–5

वृक्ष बीज मे से प्रस्फुटित हुआ, भुट्टा दाने मे से निकला। सोचकर बताओ कि यह किसकी कला है कि कण से भण्डार बन जाते हैं?–6

प्रकाश सात रंगों के समावेश से बनता है फिर भी प्रत्येक वस्तु के रंग की अलग विशेषता है। बताओ किस प्रकार छः रगो को सुरक्षित कर केवल एक रंग ही भासित होता है ?–7

बच्चा पैदा होते ही स्वतः स्तन-पान करने लगता है, पैदा होते ही कौन उसे यह प्रशिक्षण देता है। सोचकर बताओ।–8

परिस्थितियों के अनुसार थोड़ा-थोड़ा सभी वस्तुओं में अन्तर है, फिर क्यों एक व्यक्ति तो सम्पन्न है और दूसरा अकिंचन ? सोचकर बताओ।–9

आदि से ही प्रकृति का नियम अपरिवर्तनीय और अटल है, यह किसकी शक्ति के बखान का साक्षी है ? सोचकर बताओ।–10

रूप में समयानुसार परिवर्तन हो जाता है पर (शरीर की संरचना करनेवाले पाच) तत्व सृजन और विनाश से दूर हैं। प्रत्यक्ष रूप से नश्वर दिखनेवाली वस्तु मे तत्वों की नित्यता किसने प्रदान की है ? सोचकर बताओ।–11

रेखा का निर्माण करनेवाली बिन्दुएं घनत्वहीन है तो फिर रेखा मे दीर्घता का आभास कैसे आ जाता है ? सोचकर बताओ।–12

बिन्दु निर्गुण है और उसका अस्तित्व एक ही है, दूसरा नही हो सकता, परन्तु जब बिन्दुएं मिलकर रेखा बन जाती हैं तो उसके अस्तित्व का अलग स्थान कैसे बन जाता है। सोच कर बताओ।–13

दर्पण को दर्पण के सम्मुख रखकर देखो, एक मे से अनेक प्रतिबिम्ब कैसे हो जाते हैं ? सोच कर बताओ।–14

पोले और सीधे बास मे वह (परमात्मा) स्वय ही तो फूंक भरता है, वरना 'बेवस' के शब्द मे तो है ही क्या ! सोच कर बताओ।–15

मूल शीर्षक 'पर्दे पुठ्यां'

प्रियतम तेरा दिव्य दर्शन–7

[कबीर ने 'लाली मेरे लालकी, जित देखू तित लाल'—कहकर उस परमात्मा-खण्ड के सार्वभौमिक अस्तित्व की उदघोषणा की थी। इस कविता में कवि ने उस अनन्त प्रियतम को 'लालए' से सम्बोधित कर भक्त और भगवान के नैकट्य की स्थापना की है। 'बेबस' को शत्रु में भी परमात्मा के दर्शन होते हैं। प्रभात, सूर्य, चन्द्र, वन्य-जीवन, गुल-बुलबुल, सागर-मरुस्थल सभी में उस बीज रूप शून्य के अस्तित्व का आभास होता है।]

हे प्रियतम ! सर्वत्र मुझे तुम्हारे दिव्य दृश्य के दर्शन होते हैं, अगर शत्रु भी सम्मुख आ जाता है तो उसमें भी तुम्हारे दर्शन होते हैं।–1

यामिनी की यवनिका के पीछे कर्त्ता (परमात्मा) ने क्या चमत्कार कर रखे हैं, प्रभात कैसे चमकता हुआ नये सिरे से उदय होता है।–2

उसके अभ्यास से मस्तिष्क ज्ञान से आप्लावित होने लगता है कि धूल के कणों को पार करते हुए कैसे सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश आता है।–3

दाता ने जन्म-दान से पूर्व दूध की धारा प्रवाहित की, ससार की यात्रा से पूर्व पोषण की सामग्री तैयार कर दी।–4

फूल को चोंच से स्वयं ही नोचकर और उसके क्षत-विक्षत रूप को देखकर बुलबुल (अज्ञानता वश) लुटी हुई-सी प्रलाप करने लगती है। हे बुलबुल ! तुम्हारे इस व्यवहार से स्वयं माली को भी चिढन होने लगती है।–5

(यहा कवि ने भारत-विभाजन से पूर्व रक्तपात की ओर इंगित करते हुए कहा है) भेद-भाव रूपी छुरी भी तुम ही घोपते हो और अपने दिव्य-दर्शन का मरहम भी तुम ही मलते हो, हे मेरे प्रियतम ! मेरा हृदय तुम्हारे ही हाथो मे समर्पित है।–6

वही परमात्मा मोती, माणिक्य, स्वर्ण-रजत धन-सम्पत्ति का सर्जक है तथा उसी प्रियतम के लिए सागर व मरुस्थल स्वयं आकर उपहार प्रस्तुत करते हैं ।–7

ज्योंही जीवात्मा उससे मिलने के लिए उत्सुक रहती है, त्योंही नियति का चक्र ऐसा विपरीत चलने लगता है कि जीव को वियोग की पीड़ा झेलनी पड़ती ही है ।–8

सूर्य व चन्द्र आकाश मे मानो इधर-उधर अपने प्रियतम की खोज मे परेशान होकर भटक रहे हैं । उस विराट के सौन्दर्य से अप्सरायें भी विस्मित है तथा स्वयं चौदहवीं का चान्द भी उसे देखने के लिए आकाश मे परेशान होकर इधर-उधर (दर-बदर) घूम रहा है ।–9

इस छन्द मे कवि कथनी और करनी में अन्तर की ओर इंगित करते हुए कहते है कि जो बातें बनाने में पटु हैं और करनी को कथनी के अनुसार चरितार्थ नही करता, ऐसे व्यक्ति द्वारा दी गई शिक्षाओं का दूसरों पर किंचित मात्र ही प्रभाव पड़ता है ।–10

(इस अन्तिम छन्द मे कवि अणु और शून्य बिन्दु की दार्शनिक व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ब्रह्माण्ड की वृत्ताकार स्थिति मे प्रत्येक बिन्दु वृत्त का केन्द्र है । यह केन्द्र बिन्दु अरूप और निर्गुण है । अणु भी निर्गुण है परन्तु वह अन्य अणुओ के मिश्रण से सगुण अर्थात् स्थूल रूप धारण करता है । उसके बिन्दु और शून्य रूप मे ही विराट शक्ति है । ओऽम् महा शब्द है, बिन्दु रूप है और यह जगत उस शब्द का ही विस्तार है । जो विस्तार है वह सगुण है और सगुण का संकुचीकरण निर्गुण है । (–शेर बेवस परिशिष्ट ।) 'बेवस' कहते हैं कि यह जगत उस अणु और शून्य के दृश्य का ही विस्तार है जैसे एक बीज का विस्तार वृक्ष के रूप में होता है ।–11

मूल शीर्षक 'लालण लकाउ तुंहिजो'

अंगुलियां और अंगूठी–8

[इस कविता में कथोपकथन शैली का सहारा लेकर हाथ की पांच अंगुलियों के विवाद को बड़े ही सुन्दर और नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जब सुन्दर अंगूठी तैयार होकर आई तो पांचों अंगुलियों ने एक-एक कर क्रमशः अपना दावा पेश किया कि उसको ही अंगूठी को पहनने की योग्यता है। सुनार को पंच फैसले के लिए नियुक्त किया गया तथा वादी-प्रतिवादी की तरह पंच के समक्ष बहस हुई, जिसमें छोटी अंगुली की नम्रता और दीनता की जीत हुई।]

जब ठाठ-बाट के साथ सुन्दर चौकोर नगवाली अंगूठी तैयार होकर आई तो एक कठिन परन्तु रुचिकर समस्या उठ खड़ी हुई। अगूठी को पहनने के लिए पांचो अगुलियां दावेदार बन गई और उस विवाद मे प्रत्येक अगुली ने निपुणता से अपने पक्ष मे तर्क प्रस्तुत किये। —1

स्वर्ण मुद्रिका ने प्रत्येक अगुली को आकृष्ट किया और तब प्रत्येक अगुली उसे वरण करने के लिए इच्छुक हो उठी। कवि कहते हैं कि अकेली एक अगूठी सब अंगुलियों को कैसे संतुष्ट कर सकती थी इसलिए सबने मिलकर एक सुनार को मध्यस्थ चुना और फैसले हेतु अंगूठी अमानत के रूप मे उसे सौंप दी। —2

सुनार मध्यस्थ बनकर बीच मे आसीन हुआ और अपने पक्ष मे दलील प्रस्तुत कर अगूठी को वरण करने के लिए प्रत्येक अंगुली को अपनी योग्यता प्रमाणित कर, अंगूठी ले जाने के लिए कहा। —3

सर्वगुण सम्पन्न अनामिका ने उठकर और गाल फुलाकर कहा—मैं सबसे अधिक पवित्र हूं इसीलिए मुझे कुश-मुद्रिका पहनाई जाती है। मेरे बिना हिन्दू-विधान में कोई भी कर्म-काण्ड सम्पन्न नहीं हो सकता, अतः पण्डित के पास चलो, वही मेरी सच्ची गवाही देगा। —5

तर्जनी ने स्फूर्ति एव नाटकीय ढंग से कहा कि मैं भूले-भटको का मार्ग-दर्शन करती हूं। यातायात के चौराहे पर सिपाही अगर मेरा प्रयोग न करते तो भीड़ मे कई गाड़ियां दुर्घटना-ग्रस्त हो जाती। - 6

अंगूठे ने कहा मैं अंगूठी का सहारा हूं। युद्ध में मैं शूरवीर व सबसे बलशाली हूं व सबसे मोटा हूं। ठोकर मारने के लिए योजनाबद्ध तरीके से मैं घूंसा मारता हूं व बडी गरिमा के साथ ललाट पर तिलक लगाता हू। —7

अंगूठे ने आगे कहा कि किसी भी कार्य को करने के लिए चाहे चारों अंगुलियां मिल जायें तो भी मेरे बिना कार्य सम्पन्न नहीं कर सकेंगी। (भोजन करते समय) प्रत्येक ग्रास के साथ लोग मेरे मुंह को चूसते हैं, मैं अग्रणी हू, और अलग हूं, इसलिए लोग मेरे ऊपर न्योछावर होते हैं। —8

अत्यन्त ही नम्रता और शिष्टाचारपूर्वक कनिष्ठा ने कहा मैं दुबली-पतली, कमजोर व सब अंगुलियों के नीचे हूँ, झाड़ू लगाते, कचरे को हाथ मे उठाते समय हर बार मैं धरती से अपने-आपको घिसाती रहती हूं। —9

चलते हुए मेरे प्रियतम के जूतो से जो धूल छनकर गिर पड़ती है मुझे उन पवित्र रज-कणों को समेटना अत्यन्त प्रिय लगता है क्योकि मुझे सेवा-सुश्रूषा का मार्ग ही अच्छा लगता है। उस मार्ग की धूल मुझे सोने से भी अधिक बहुमूल्य प्रतीत होती है। —10

कनिष्ठा की यह चतुराई देख मध्यस्थ ने कहा—तुम हमेशा विनम्रता व दीनता से विशेष सेवा करती हो, हे कनिष्ठा बाई! मैं तुम्हे ही इस अंगूठी के योग्य समझता हूँ, अतः सोने की अंगूठी तुम्हे ही पहनाता हूँ। —11

मूल शीर्षक "आङ्गुर्यूं एँ मुण्डी"

वाटिका और वसंत-9

[प्रकृति के विशुद्ध आलंबनकारी चित्रण की कविता है जिसमें परिगणनात्मक शैली का प्रयोग भी है।]

वसंत के चषक का पान कर पेड़-पौधे झूम रहे हैं तथा चाव और प्रसन्नता के साथ एक दूसरे को चूम रहे हैं, पवन की गति से पत्ते डोलायमान होकर थप-थप की आवाज से तालियाँ बजा रहे हैं और वृक्ष अपनी टहनियों से डंके बजाकर डाण्डिया नृत्य कर रहे हैं।

धीरज दिलाने वाली मधुर बयार के झोंके आ रहे हैं, जिसके आने से दुखियों के दु:ख दूर हो जाते हैं, सुवास और सुगंध से वाटिका परिपूर्ण हो जाती है और ऐसा प्रतीत होता है मानो काश्मीर का दृश्य यहां उपस्थित हो गया हो।

दुखों के दिन दूर हो गये है और कठिनाईयाँ दूर चली गई हैं, पतझड़ के पश्चात् वसन्त का आगमन हुआ है जिससे शुष्क वृक्ष भी हरे हो गये हैं।

पुष्प अपने यौवन को प्राप्त कर प्रस्फुटित होकर धूम मचा रहे हैं, टहनी-टहनी पर पुष्प लाल होकर खूब खिल रहे है, गेंदा और गुलाब मानो आंखों को पारितोषिक के रूप में मोहरें प्रदान कर रहे हो तथा ओस के कण मानो सुरुचि के साथ मोतियों की मुट्ठियाँ खोल कर वर्षा कर रहे हों।

प्रकृति ने पृथ्वी पर चित्रकारी-युक्त मख़मली गलीचा बिछा दिया है, फागुन के आगमन से मुकुलों ने मुख खोला है और वाटिका का भाग्योदय हुआ है, बुलबुल की चहकने की आवाज के साथ कोयल ताल मिलाकर गा रही है, मोरनी प्रसन्न होकर खेल रही है और मोर को नचा रही है।

मूल शीर्षक "बाग़ ऐ बहार"

प्रियतम–10

[प्रियतम के रूप में परमात्मा को सम्बोधित करते हुए कवि 'बेवस' उन्हें अपनी श्रद्धांजलि तथा धन्यवाद अर्पित करते हैं। प्रार्थना-परक शैली के साथ उपनिषदों के सर्ववाद की हल्की-सी झलक इस कविता में मिलती है, साथ में कवि ने अहिंसा एवं जीव-दया पर रहते हुए कथनी के बजाय करनी के मार्ग पर बल दिया है।]

यह-जग प्रसिद्ध है कि कष्ट तुम देते हो और मैं फिर भी तुम्हारे ऊपर विश्वास रखता हूँ, लेकिन वास्तविक रूप में देखा जाये तो तुम ही तो विश्वास उत्पन्न करते हो कि कष्ट तो हमारे ही कर्मों के कारण है।

मैं देखता हूँ कि सहस्रो देदीप्यमान नेत्रो के साथ तुम तारक और ग्रह-मण्डल से आ रहे हो फिर भी मेरा मन कलुषित है और अभी तक स्वच्छ नही हो पाया है। –1

आजीवन हमने तुम्हारा ही नमक खाया है फिरभी तुम्हारे निमित्त एक पाई भी दान में नही दी है, जगत मे एक बात ही शाश्वत रहेगी—तुम्हारी उदारता और हमारा दोष (कृतघ्नता)।—2

प्रियतम को आकर्षित करने के लिये सैकडो शृंगार किये जाते हैं किन्तु अपने अन्तःकरण मे हम झाक कर नही देखते कि उससे मिलने के लिए हमारा प्रेम कितना तुच्छ है।—3

जीव-हिंसा की ओर इंगित करते हुए कवि कहते हैं कि शिकार के शौक के कारण बेचारे मूक पशुओं की जान ली जाती है, तुम उनके सर्जक हो और मैं उनको मारने वाला, तुम तो दया करते हो और मैं हत्या करता हूँ।—4

सुखों में मैंने तुझे भुला दिया, दुखों में जाकर मुश्किल से याद किया फिर भी हे दाता! तुम तो वरदान देते गये और मैं स्वभाव से ही बेशर्म बना रहा।—5

कहने को तो मैं बहुत सुन्दर बातें कहता हूँ, पर करनी मेरी नितान्त विपरीत है। 'बेवस' कहते हैं मैं अहम् के लिए भ्रम में बह रहा हूँ, और यह सब वासना मेरी ही है।

मूल शीर्षक 'होत'

एकाकीपन–11

[आत्मा अपने निज धाम से अकेली आई है और अकेली ही प्रयाण करेगी, मृत्यु लोक से निज देश में वापस जाने के लिये जीवात्मा को अकेले ही प्रयत्न करने हैं। ब्रह्म एक है, अद्वैत है, एकाकी है उसी से मिलने के लिये एकाकीपन का सहारा लेकर साधक को आगे बढ़ना है। सूफ़ी सन्तों ने साधना के चार सोपान माने हैं (सरीयत, तरीकत, मारफ़त और हक़ीकत)। कवि ने इस कविता के पाचवें छन्द में हक़ीकत की अवस्था प्राप्त करने के लिये अपनी धारणा को केन्द्रित कर आन्तरिक प्रकाश प्राप्त करने की ओर इंगित किया है।]

हर एक अपने मूल धाम से एकाकीपन लिये हुए आता है और वैसे ही अकेलेपन के साथ वह दुनिया से लौट जाता है।

जो अकेला आया है उसे अन्त मे अकेला ही वापस जाना है, इस आवागमन के चक्र से ही एकाकीपन की प्रक्रिया का डंका बजता रहता है।—1

तपस्वी, ऋषीश्वर, मुनीश्वर, सन्त और साधु जप-तप तथा योग-समाधि आदि प्रक्रियाएं भी अकेलेपन मे ही करते हैं।—2

सच्चे साधक परमात्मा से सदैव एकांतवास की ही याचना करते हैं, जिनके मन प्रभु की प्राप्ति के लिये व्यथित हैं उनके मन का आशय एकाकीपन से ही पूर्ण हो सकता है।—3

संसार की विविध विद्याओं के ग्रन्थ, ज्ञान के सर्वोच्च भण्डार तथा उनके अध्ययन से उत्पन्न विचार और अनुभव तभी मूर्त्तरूप मे आये हैं तब जीव को एकाकीपन उपलब्ध हुआ है।—4

जब धारणा मस्तिष्क मे केन्द्रित होती है तब विचार अन्तःकरण में परिष्कृत होकर प्रकाश (ज्ञान) का रूप बन जाता है और साधक एकाकीपन मे डुबकी मारकर समाधि की आखिरी अवस्था "हकीकत" तक पहुँच जाता है।—5

जो हृदय नित्य ही बुझे हुए हैं अर्थात् ज्ञान के प्रकाश से वंचित हैं, वे अपनी इन्द्रियों के सुख की प्राप्ति के लिए मन के एकाकीपन को दुत्कार कर काम चेतना का सहारा लेते हैं।—6

जिस हृदय मे ज्ञान का प्रकाश नही है वह लोगों को आस-पास न देखकर उदास हो जाता है तथा उसके लिए एकाकीपन निःसंकोच ही भार बन जाता है।—7

परमात्मा एक है, अद्वैत है और एकाकीपन मे ही मस्त है। उसने मस्ती में एक से अनेक की लीला रची है। 'बेबस' कहते है कि उसकी सारी प्रजा ने उसे भुला दिया है।—8

मूल शीर्षक 'अकेलाई'

अछूतों के उद्धार के लिये–12

[गांधीवाद के प्रभाव तथा मानववादी होने के नाते कवि ने सदैव समानता, न्याय तथा शोषण-रहित समाज की परिकल्पना की है। वे अस्पृश्यता की समस्या के प्रति सदैव जागरूक रहे और उन्होंने अछूतों के उद्धार की वकालत की।]

अछूतो के उद्धार के लिए गंगा पुनः प्रवाहित होकर आई है तथा कैलाश के विशाल वक्षस्थल से अवतरित होकर आई है।

अछूतो के मार्मिक क्रन्दन ने पूरी पृथ्वी को उनके दुःख के धुएँ से आच्छादित कर दिया है जिससे स्वयं करुणा ही अछूत-उद्धार रूपी वर्षा की बून्द बनकर ठण्डक पहुँचाने के लिये उतर आई है।—1

थोथी हवा मे मनुष्य के अभिमान की एक अट्टालिका बनी हुई थी जो अछूतोद्धार की महानता के कारण धराशायी हो गई है।—2

उनके प्रति अपने रवैये से हमने अपनी करनी का फल भोग लिया है, जब कपट सहे हैं तब जाकर सद्‌बुद्धि का प्रादुर्भाव हुआ है।—3

यह अनोखा आन्दोलन अभी तक दूर प्रदेशो मे चल रहा था परन्तु वेवस कहते हैं कि अब यह सिन्ध प्रदेश तक पहुँचा चुका है।—4

मूल शीर्षक "अछूतन जे उधारण लइ!"

देश-प्रेम—13

[इस कविता की रचना सन् 1916 में हुई थी जब प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका अपने चरमोत्कर्ष पर थी। युद्ध प्रचार समिति, सिन्ध ने इस कविता को सर्वोत्कृष्ट मानते हुए इसे पुरस्कृत किया था। कवि ने देश-प्रेम तथा स्वतन्त्रता के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि जिस प्रकार ईसा को वरदान प्राप्त था कि वह एक फूंक से मुर्दे को जिला सकता था उसी प्रकार मुल्क के मुर्दा शरीर में अगर देश-प्रेम के नाम की फूंक मारी जाये तो वह पुनर्जीवित हो जायेगा। इस कविता को स्वतन्त्रता से पूर्व देश-भक्त गाते हुए [illegible] दिखलाई देते थे। इस कविता का छन्द-विधान, अनुप्रास-योजना तथा [illegible] इतनी सशक्त और प्रबल है कि कायरों में भी जान डाल सकती है।]

ज्ञान, स्वतन्त्रता, प्रचार, [illegible] लिए सच्चा प्रेम विद्यमान होगा।

देश-प्रेम और देश-[illegible] सहारा लिया उन्होंने संसार के [illegible] है।—1

वे माताएं [illegible] शिशुओं को यह [illegible] और कोई सेवा नहीं है।—2

ऐसे पावन-[illegible] और ये ही [illegible]—3

देश-प्रेम [illegible] विरोधियों के [illegible] लेना है।—4

वर्ण, भाषा और राष्ट्रीयता के सभी भेद मिट गये। सभी के मन परिवर्तित हुए और वे एक देश के वासी बनकर सभी ने घृणा का परित्याग किया और प्रेम की शिक्षा प्राप्त की।—5

वृद्धों में यौवन का उन्माद आया, स्त्रियों ने लड़ाई की वर्दी पहनी। देश-प्रेम में इतनी विचित्र हिम्मत है कि सभी ने प्रसन्नतापूर्वक देश के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित की।—6

पक्षी छुटपन मे ही पिंजरे में कैद हो गया और पिंजरे का मालिक उसे परदेश ले गया। उस पक्षी को दिन-रात यही चिन्ता थी कि किस्मत ने मुझे यहा कैसे कैद किया है।—7

जब उस पक्षी की वृद्धावस्था आई तब उसे अपने देश का एक भाई मिला, जिसके माध्यम से उसने अपने देश का समाचार सुनते ही बड़े आराम के साथ अपना दम तोड़ दिया।—8

हमारी दयालु देशमाता का दूध हमारी रगो में प्रवाहित हुआ है तथा वहाँ वह लहू बनकर हमारी नाड़ियों के अन्दर दौड़ता हुआ क्रियाशील है। – 9

[इस छन्द में कवि ईसा की एकवार्ता की ओर इंगित करते हुए कहते हैं कि ईसा को यह वरदान प्राप्त था कि वह एक फूंक से मृतकों को जिला सकता था। उसी प्रकरण को लेकर कवि कहते हैं कि] अगर गुलाम के मुर्दा जिस्म में जान डालनी है तो स्वदेश के नाम की फूंक मार दो तो वह पुनर्जीवित हो जायेगा क्योंकि मुझे उसमें (देश के नाम मे) ईसा मसीह की फूंक जैसा चमत्कार दृष्टिगोचर होता है। 10

'बेवस' कहते हैं कि भारत मे सौ में से नब्बे व्यक्ति अपने मन की बात कर रहे हैं अर्थात् स्वतन्त्रता की मांग कर रहे है और वहां मुझे देश-प्रेम के संगीत व नौबत की ध्वनि सुनाई दे रही है।—11

मूल शीर्षक 'मुल्की प्यार'

कली की बेचैनी–14

[एक कली पंखुड़ियों के परिरम्भ में बन्द है। यह पंखुड़ियों के अवगुंठन को हटाकर अपने रूप-यौवन का प्रदर्शन करना चाहती है, उसकी बेचैनी देखकर कवि उसे आश्वस्त करते हैं कि जब तक कली अपरिपक्व है तब तक उसे उतावलापन प्रदर्शित नहीं करना चाहिए। जैसे ही उसके आन्तरिक यौवन का चरमोत्कर्ष होगा, अपने आप ही बाह्य आवरण हट जायेगा।]

मैं स्निग्ध सुगन्ध से भरी हुई हूँ तथा बाहर आना चाहती हूँ। यह परकोटा कैसे गिराऊँ और पखुड़ी रूपी पर्दे के बन्धन कैसे उतारूँ, कब बसन्त का आगमन होगा और मेरे आवरण का अन्त होगा।—1

मेरी सारी शोभा को इस आवरण ने छिपा दिया है, कोई मेरे ऊपर कृपा करे और बन्धन से मुक्ति दिलाये, पखुड़ियों का आवरण कब हटेगा और मेरा सौन्दर्य कब उन्मुक्त होगा।—2

बसन्त का आगमन होगा, पखुड़ियों का आवरण तेरे मुख पर से हटकर फट जायेगा और सुन्दरता को स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। हे कली! बसन्त ऋतु के आगमन से तुम्हारा मुख-मण्डल पंखुड़ियों के पर्दे को चीरकर कस्तूरी जैसी सुगन्ध को व्याप्त कर तेरे रूप को हमेशा के लिए बन्धन-मुक्त कर देगा। मन्द पवन के प्रवाह से तुम्हारे रूप का निखार होगा और सुगन्ध प्रस्फुटित होगी।—3

'बेवस' कहते हैं कि मुकुलिका तो अपरिपक्व है उसने व्यर्थ ही जल्दबाजी मचा रखी है, जब उसका आन्तरिक प्रस्फुटन होगा तो स्वतः बाहर का आवरण हट जायेगा।

मूल शीर्षक 'मुखिड़ीअ जी बेताबी'

कविता पति–15

(बेवस की रचनाओं पर कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का गहरा प्रभाव था। यह कविता कवि ने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के निधन पर 7 अगस्त, 1939 को लिखी थी। 'बेवस' अक्सर सायंकाल को 'ज्ञान बाग' नामक अपने उद्यान में गीता अथवा गीताञ्जली पर प्रवचन करते थे। रवीन्द्रनाथ की असामयिक मृत्यु की सूचना मिलते ही कवि का कोमल हृदय शोकाकुल हो उठा। उसी क्षण उन्होंने व्यथित चित्त से रवीन्द्रनाथ ठाकुर को अपने श्रद्धा-सुमन इस कविता के रूप में अर्पित किये।]

माता कविता आज कविता पति के निधन से शोकाकुल है, वियोग रूपी विद्युत् के ऊष्ण झटके से सारा जगत संतप्त है।

नयन रूपी तालाब से अबाध अश्रुधारा छलककर उसी प्रकार प्रवाहित हो रही है जैसे अतिवृष्टि का अनवरत जल-प्रवाह बह रहा हो।—1

जिसके अस्तित्व के कारण भारत गौरवान्वित हुआ था, उस महान कवि ने आज दिव्यलोक की ओर महाप्रयाण किया है।—2

कलकत्ता के करुण-क्रन्दन की ध्वनि विश्वव्यापी हो गई है, मृत्यु के इस सन्देश को सुनकर मुख से अनायास ही आर्तनाद शब्दमान हो रहा है।—3

हम गुरुदेव के चरणों मे श्रद्धा-सुमन अर्पित करें, इन फूलो में हमारा अन्तःस्थल समाया हुआ है और हमारे अन्तःस्थल मे दुःख का काँटा चुभा हुआ है।—4

पूर्व और पश्चिम के अश्रुओ का संगम एक धारा मे प्रवाहित हो रहा है, 'बेवस' कहते हैं हमारा हृदय आप्लावित और अनियंत्रित हो गया है, अब यह कैसे वश में आयेगा?

मूल शीर्षक 'कवितापति'

लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करेंगे–16

[यह कविता उस समय रची गयी है जब भारत परतन्त्र था और देश का सारा कच्चा माल अंग्रेज लोग ब्रिट्रेन के कारखानों मे भेजते थे जहां वह तैयार माल के रूप में भारत को निर्यात किया जाता था और अत्यन्त ही मंहगे मूल्य पर भारत में बेचा जाता था। जब महात्मा गांधी ने स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात किया तब कवि ने इस कविता को प्रस्तुत किया। कविता के अन्तिम छन्दों में कवि ने अत्यन्त ही मार्मिक शब्दों में कहा है कि अगर मेरे कफन में विदेशी धागे का प्रयोग किया गया तो मेरी लाश मरणोपरान्त भी सकोच से शरमा जाएगी।]

भारतीय हस्तकला को हम हर प्रकार से प्रोत्साहित करेंगे, अपने देश मे केवल स्वदेशी माल का ही प्रयोग करेंगे।

मुझे अपने प्यारे देश से अत्यन्त प्रेम है, देश के प्रत्येक व्यवसाय, हुनर व कारोबार को हम प्रोत्साहित करेंगे।—1

मेरे मुख ने व्रत धारण किया है कि वह केवल स्वदेशी पदार्थ का ही उपभोग करेगा, देशी चीज़ चाहे कम स्वादिष्ट क्यों नही हो, उसे अत्यन्त मीठी समझकर खारी चीज को भी खुशी से खाएगा।—2

भले ही वह हल्के किस्म का लाख से रंगा हुआ मोटा दुशाला हो, तो भी देश मे निर्मित उस खुरदरे परिधान को ओढ़कर प्रसन्नता प्राप्त करूंगा।—3

सर्वप्रथम मध्यमा ने उठकर न्याय के लिए अपना तर्क प्रस्तुत किया कि मेरे आकार को देखो, बड़प्पन तो मुझे वंशानुगत मिला है, मेरे समक्ष दूसरी अंगुलियो का आकार कितना छोटा है, अतः जो सबसे अधिक बड़ी हो उसे ही अंगूठी मिलनी चाहिए।—4

अगर कोई वस्तु भारतीयों के द्वारा बनाई हुई नहीं है तो अपना समय किसी भी प्रकार उसके बगैर काट लेंगे।—4

बिना हस्तकला के विकास के करोड़ों भारतवासी कंगाल हो गए हैं, उन्हें व्यवसाय, खाना और कपड़ा दिलायेंगे।—5

अगर मेरे कफ़न में विदेशी धागों के तार बुने हुए होंगे तो 'वेवस' कहते हैं कि मेरी लाश मरणोपरान्त भी संकोच से शरमा जायेगी।

मूल शीर्षक 'घरू हुनुर हिमथाइबा'

अतीत का गौरव–17

[सिन्धी साहित्य के सर्जक भारत के अतीत के गौरव के प्रति सदैव सजग रहे हैं। सिन्ध में मुअनि-जो-दड़ो (मोहन-जोदड़ो) अर्थात् मृतकों का टीला की सभ्यता के अवशेष जग-प्रसिद्ध हैं। अध्यापक होने के नाते कवि कई बार अपने विद्यार्थियों को मुअनि-जो-दड़ो की सभ्यता के अवशेष दिखाने ले जाते थे। भारत के प्राचीन इतिहास तथा गौरव के प्रति उनकी विशेष आसक्ति थी। परतन्त्रता के कारण उनको यही दुःख था कि वे लोग आज वहाँ भूखे और अकालग्रस्त हैं जहाँ सोने की नदियां बहती थीं।]

हाय भारत! तुम्हारे अतीत का गौरव क्या था, तुम्हारा अद्वितीय प्रताप क्या था, तुम्हारा ऐश्वर्य क्या था!

तुम्हारा वैभव और प्रताप सारे संसार से बढ़कर था, सोने की नदियां बहती थी व सारा प्रदेश धनवान था।—1

प्रतिवर्ष फसल के समय खाद्यान्न के अक्षुण्ण भण्डार उतरते थे, पूरे उपखण्ड मे अकाल का नामोनिशान नही था।—2

देश मे आवश्यकता से अधिक कपड़े एवं वस्त्रो का निर्माण होता था, ढाका की ओजस्वी बारीक मलमल की क्या शान और सुन्दरता थी।—3

कैसा आद्योपान्त अन्तर आया है कि सारा भारत परावलम्बी और परवश हो गया है। जिस हरी-भरी वाटिका मे बुलबुलें बसती थी वह श्मशान में कैसे परिवर्तित हो गया है।—4

जिसने लाखों लोगो के अंग ढके थे आज वे ही नग्न फिर रहे हैं। जिनके देश मे धनधान्य की वर्षा होती थी, वे भूख से मर रहे हैं।—5

मूल शीर्षक 'क़दीमी शान'

कहां ?–18

[कवि एक सीमा तक प्रगतिवादी भी थे, वे परमात्मा के भक्त होते हुये भी मन्दिरों और तीर्थों में परमात्मा को नहीं मानते थे। अपनी कविता में कवि ने जन-सेवा को ईश्वर-भक्ति से बढ़कर बताया है। प्रस्तुत कविता में भी कवि ने बड़े ही मार्मिक व हृदयस्पर्शी शब्दों में कहा है जगत-पति मुरलीधर मथुरा और गोकुल को तज कर शहरों में सेवा करने के लिए चले गये हैं, वहीं जाकर उनकी पूछताछ करो।]

मेरे हृदय के देवता ! मैं तुम्हारे मन्दिर को कहां ढूंढू, बताओ वह अन्तःकरण कहां है जिसमें प्रभु के प्रेम का प्रकाश प्रज्ज्वलित है ?—1

हे न्यायकारी, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा जीवनरूपी पोत दिशा-भ्रान्त हो रहा है। बताओ ! हम बिरही जीवों के अपनी जहाज़ को किनारे लगाने के लिये बन्दरगाह कहा है ?—2

जगत-पति मथुरा और गोकुल को तज कर चले गए हैं, वे यमुना मे भी नही हैं। हे जीव ! अगर तुझे उस मुरलीधर से मिलना है तो उसे नगर की सेवा-सुश्रुषा मे जाकर प्राप्त करो —3

प्राकृतिक प्रभावों से ताम्बा (भूगर्भ में) बहुमूल्य सोने में परिवर्तित हो जाता है, हमारे व्यथित हृदयो मे प्रेम-रूपी सोने का प्रादुर्भाव करनेवाला वह परमात्मा रूपी रसायनशास्त्री कहा है ?—4

जिसके वियोग मे अपनी शक्ति और सुधबुध भूलकर हम बर्बाद हो गये हैं, और जिसे देखने के लिए हमारे प्रेमी हृदय-इच्छुक हैं, वह प्रियतम कहां है ?—5

योग जप-तप, साधना, भक्ति, समाधिज्ञान को भग करने के लिए मस्त माया रूपी अजगर हमे डस रहा है।—6

जिस द्वार पर पहुंचने के पश्चात् अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, उस अक्षुण्ण भण्डार के दाता का द्वार कहां है ?—7

जिसकी एक झलक से सूर्य और चन्द्रमा देदीप्यमान हो जाते हैं, वह स्वतः प्रकाशित अनन्त सौन्दर्य का सागर कहां है ? – 8

संसार रूपी सागर भीमकाय तरंगों से उद्वेलित है, मेरे उद्देश्य रूपी बन्दरगाह पर मार्ग-प्रदर्शन हेतु कोई प्रकाश-स्तम्भ भी नहीं है, व्याधी की तरह फैले हुए अन्धकार में प्रकाश रूपी ज्ञान को दर्शानेवाला पथ-प्रदर्शक कहां है ? –9

[इस छन्द में कवि भक्तिकालीन सिन्धी साहित्य की नायिका ससुई की ओर इंगित करते हुए कहते है कि] वह सुखों की सेज पर पली हुई थी पर प्रेम के विरह में उसकी सारी कोमलता विलीन हो गई और वह कोमलांगिनी पहाड़ों में भटकती रही।—10

[इस छन्द में कवि ने हीर और रांझा की प्रेम-गाथा की ओर संकेत करते हुए कहा है कि] रांझा हजारा नगर की राजगद्दी का उत्तराधिकारी था, किन्तु हीर के प्रेम में उसने राजेश्वर की गद्दी का त्याग कर दिया और उसने रावी नदी के किनारे भैंस चरानेवाले नौकर के रूप में आकर काम किया।—11

आवाज़ और आवाज़ की प्रतिध्वनि फिर भी सुनने में अलग-अलग है अर्थात् प्रत्येक जीवात्मा परमात्मा का अंश होते हुए भी प्रतिध्वनि के समान मूल आवाज़ से भिन्न भासित होता है। अतः मनन-चिन्तन कर बताओ कि आवाज़ में यह परिवर्तन कहां हो जाता है।—12

"बेवस" कहते हैं "हे जीव ! स्वप्न में स्वप्निल सामग्री को देखकर तुम तृप्त हो गए, अपनी सारी चेतना को एकाग्र कर होश सम्भाल कर देखो कि तुम्हारा आदि घर कहां है ? —13

मूल शीर्षक 'किथे ?'